भूषण-विमर्श

लेखक—

साहित्य-रत्न श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित

भूतपूर्व इन्स्पेक्टर ऑव स्कूल्स कोटा, प्रधानाचार्य हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग,
साहित्य अन्वेषक नागरीप्रचारिणी सभा काशी; साहित्य सुधाकर,
साहित्य विनोद और शिवाबावनी आदि ग्रन्थों के
रचयिता और टीकाकार आदि।

प्रकाशक

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर

(Saraswati Publishing House)

जार्ज टाउन, इलाहाबाद

पहला संस्करण] १९९५ [मूल्य २॥)

प्राक्कथन

संवत् १६७६ वि० में नागरी प्रचारिणी सभा काशी के तत्वावधान में मैंने असनी, ज़िला फतहपुर की यात्रा की थी। इस यात्रा का उद्देश हस्तलिखित पुस्तकों का अन्वेषण करना तथा उनकी रिपोर्ट लेना था। पुण्यसलिला भागीरथी के किनारे असनी एक अत्यन्त मनोहर ग्राम है। यहाँ पर प्राचीन काल से संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् और कवि होते चले आये हैं। बादशाह अकबर के दरबारी कवि नरहरि महापात्र यहीं रहते थे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि इसी नगरी में हुए हैं। आज भी यहाँ साहित्यिकों की एक अच्छी संख्या है। पचासों अपढ़ लोग ऐसे मिलेंगे, जिन्हें सैकड़ों कवित्त याद हैं। सन्ध्या के समय इन लोगों का कविता-पाठ एक अपूर्व आनन्द देता है। यहाँ मैं और मेरे एक अन्य साथी ६ महीने तक हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों की नोटिसें लेते रहे परन्तु वे समाप्त नहीं हुईं। उनमें सबसे उत्तम संग्रह नरहरि महापात्र के वंशज श्रीलालजी महापात्र के पास हैं। उसी संग्रह में एक पुस्तक मतिरामकृत 'वृत्त कौमुदी' (छन्दसार पिंगल) नामक भी थी, जिसके आधार पर ही इस 'भूषण विमर्श' की रचना हुई है। वृत्त कौमुदी में मतिराम के पिता का नाम, वंश, गोत्र आदि भूषण के वंश, गोत्र और पिता के नाम से भिन्न है। अतः भूषण और मतिराम सहोदर भाई नहीं माने जा सकते। इसी विषय को लेकर नागरी प्राचारिणी पत्रिका, भाग ४ अंक ४ में एक विवेचनात्मक लेख लिखा गया था जो तत्कालीन धारणा के नितान्त विरुद्ध था। इस पर हिन्दी संसार एक बार ही विक्षुब्ध हो उठा। उस लेख में कुछ महानुभावों को एक ऐतिहासिक मर्यादा टूटती हुई दिखलायी दी। कई विद्वान् आलोचकों ने

इस लेख के विरुद्ध आवाज़ उठायी और इसके खंडन में अनेकों लेख प्रकाशित हुए; परन्तु इन विरोधी लेखों से मुझे बल ही मिला। अनेकों बातों के (जो अनुमान पर अवलम्बित थीं) स्पष्ट प्रमाण मिलने लगे। भूषण मतिराम सम्बन्धी खोज और भी ज़ोरों से होने लगी। इसी कार्य के लिए मैंने भूषण के निवास-स्थान तिकमापुर की यात्रा की। वहाँ सिवाय खंडहरों के और कुछ न मिला। हाँ, मतिराम के वंशज गंगाप्रसाद नामक सज्जन तिकमापुर से ४-५ मील के अन्तर पर बाँद ग्राम, तहसील घाटमपुर जिला कानपुर में मिले। उनके पास इनकी एक वंशावली, प्राचीन पत्रों पर भूषण के कुछ छन्द, मतिराम के पन्ती बिहारी लाल कवि के कुछ पत्र और बुन्देल राजा विक्रमशाह तथा जयपुर नरेश की सनदें मिलीं, जो बिहारीलाल के नाम थीं। बहुत सम्भव है, वे पत्र भूषण या मतिराम के लिखे हों। ये पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं।

मैंने राजा बीरबल का बनवाया महादेवजी का मन्दिर और बाग़ भी देखा जिसका उल्लेख भूषण ने शिवराज-भूषण में किया है और जो घाटमपुर-हमीरपुर रोड पर अवस्थित है। गजेती में मतिराम के एक और वंशज 'मान' जी मिले। ये लोग अपने को बछई के तिवारी कहते हैं। तिकमापुर से डेढ़-दो मील के अन्तर पर रन-वन की भुइयाँ देवी का मन्दिर है। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि यहीं भूषण के पिता रत्नाकर देवी की उपासना किया करते थे। यहाँ बड़ा मन्दिर तो नहीं है, परन्तु पीछे की बनी मढ़िया अवश्य है। पुराना मन्दिर सम्भवतः नष्ट हो गया।

इसी अन्वेषण का उद्देश्य लेकर मैंने तीसरी यात्रा रीवाँ राज्य की की। वहाँ के दीवान बहादुर पंडित जानकी प्रसादजी चतुर्वेदी के० सी० एस० आई०, महोदय ने वहाँ का रेकर्ड आफ़िस देखने के लिए हर प्रकार की सुविधा कर दी थी और पटेहरा (जहाँ पर हृदयराम के वंशज रहते हैं) की यात्रा का भी पूरा प्रबन्ध करने की कृपा की थी।

तदर्थ उन्हें अनेक धन्यवाद हैं। रीवाँराज के इतिहास में हृदयराम की जागीर का वर्णन भी दिया है और यही विवरण रेकर्ड आफिस में भी प्राप्त हुआ जो महाराजा अवधूतसिंह (भूषण के आश्रयदाता) के पुत्र अजीतसिंह ने संग्रह कराया था। पटेहरा में हृदयराम के वंशज कुँवर अवधेश प्रतापसिंह और राजा रामेश्वर प्रतापसिंह के पास सुरकियों की एक वंशावली और महजरनामा आदि कई काग़ज़ात मिले, जिनसे भूषण के उपाधि-दाता और आश्रयदाता हृदयराम के समय पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। रीवाँ-यात्रा में पंडित अम्बिका प्रसादजी भट्ट 'अम्बिकेश', राजकवि रीवाँ दरबार से अधिक सहायता मिली थी।

मुझे पंजाब में भी कई मास तक खोज करने का अवसर मिला और वहाँ से भी भूषण-मतिराम सम्बन्धी अच्छी सामग्री मिली थी। पटियाला स्टेट लाइब्रेरी में मतिराम कृत 'अलंकार पंचाशिका' और नारनौल में चिन्तामणि कृत पिंगल की अत्यन्त प्राचीन प्रति तथा मतिराम कृत वृत्त-कौमुदी की दूसरी प्रति, जो अधिक शुद्ध और अधिक प्राचीन थी, प्राप्त हुई। इनसे मुझे भूषण और मतिराम के बारे में अनेकों नवीन बातें ज्ञात हुईं।

चित्रकूट की यात्रा मैंने दो बार की। वहाँ पर मुझे अधिक सामग्री तो प्राप्त न हुई; परन्तु हृदयराम के वंशज गंगासिंह नाम के एक वृद्ध-सज्जन अवश्य मिले जिन्होंने बतलाया कि हृदयराम, सुरकियों की भागलपुर वाली शाखा के पूर्वज थे। वहाँ से यह भी पता चला कि भूषण चित्रकूट-नरेश बसन्तराय सुरकी के दरबार में भी गये थे जो हृदयराम के भतीजे थे। बसन्तराय सुरकी की प्रशंसा में यह पद्यांश भी मिला;

"*बसन्तराय सुरकी की कहूँ न बाग सुरकी।*"

इसे खोही (चित्रकूट) के प्रसिद्ध ब्रह्मचारी रामप्रसादजी ने बतलाया था। 'शिवसिंह सरोज' के रचयिता स्वर्गीय ठाकुर शिवसिंह जी सेंगर के पुस्तकालय का भी मैंने कई मास तक अन्वेषण किया। ये महाशय

काँथा, ज़िला उन्नाव के निवासी थे। यहाँ भी मुझे कई मास तक रहने का अवसर मिला और वहाँ हम लोग हस्तलिखित पुस्तकों की नोटिसें लेते रहे। यहाँ से भी एक पुस्तक रतन कवि कृत 'फतह प्रकाश' मिली जिसमें भूषण के दो नवीन छन्द मिले। इनका उल्लेख इस पुस्तक में यथास्थान किया गया है। 'शिवसिंह सरोज' की रचना मतिराम और भूषण का इतिहास और चरित्र शुद्ध करने के लिए ही की गयी थी। इससे स्पष्ट है कि जनता मे भूषण-मतिराम विषयक बहुत भ्रान्ति फैली हुई थी। भिनगा राज, ज़िला बहराइच में मुझे कई मास तक पुस्तकों के अन्वेषण के लिए रहना पड़ा था। वहाँ से भी एक छन्द भूषण कृत मिला जो भगवन्तराय खीची की मृत्यु पर उन्होंने लिखा था।

इस प्रकार मुझे भूषण सम्बन्धी अन्वेषण में भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक प्रकार की सहायता प्राप्त हुई, जिनका आधार लेकर नागरी प्रचारिणी पत्रिका, माधुरी, हिन्दोस्तान, सुधा, मनोरमा, गंगा, भारत, प्रताप, साहित्य इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर अनेकों लेख प्रकाशित हुए। इनमें भूषण की जीवन सम्बन्धी घटनाओं के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार किया गया था। इसके विरोध में भी लेख प्रकाशित हुए जिनसे विचार करने का और भी अवसर मिला और भूषण-विषयक-ज्ञान की वृद्धि हुई, तथा मुझे अपने विचारों को आगे बढ़ाने के लिए उत्कृष्ट सामग्री मिली। इनमें मुख्यतः स्वर्गीय पंडित मयाशंकरजी याज्ञिक के लेखों से मुझे अत्यन्त सहायता मिली, जिससे भूषण के बारे में फैली हुई अनेकों भ्रान्तियाँ दूर हो सकीं।

सभासद बखर में भी भूषण का उल्लेख मिलता है। उसमें लिखा है कि भूषण कवि कुमाऊँ इत्यादि पहाड़ी राज्यों का भ्रमण करने के पश्चात् दक्षिण में शिवाजी के पास गये थे। ये बखरें बाजीराव पेशवा के समय अथवा उसके पीछे एकत्रित की गयी थीं। इसी प्रकार गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपनी

शिवराज शतक' नामक पुस्तक में लिखा है कि भूषण ने पहले कुमाऊँ इत्यादि पहाड़ी स्थानों में भ्रमण किया, फिर वे राजपूताने में घूमकर दक्षिण की ओर गये थे। वास्तव में भूषण शिवाजी के दरबार में नहीं गये थे—शाहू की सेवा मे उपस्थित हुए थे। दक्षिण की दूसरी यात्रा में भूषण संभवतः बाजीरव पेशवा के भाई चिमनाजी (चिन्तामणि) से मिले थे और उनकी प्रशसा में उन्होंने एक छन्द भी कहा था।

कुछ लोगों ने चिमनाजी के बारे में लिखा है कि वे शिवाजी के पार्षदों में से थे। भूषण ने शिवाजी के किसी सरदार की न तो प्रशंसा की और न उनका कुछ वर्णन ही किया है। ऐसी दशा में अपने से पूर्वकालीन किसी साधारण व्यक्ति की शिवाजी के समान प्रशसा करना कभी सम्भव नहीं। यथार्थ में भूषण ने बाजीराव पेशवा के भाई चिमनाजी की ही प्रशसा की है जिसन गुजरात इत्यादि कई सूबों को बड़ी वीरता से विजय किया था। ये महानुभाव छत्रपति शाहू के प्रसिद्ध सरदारों में थे और बाजीराव पेशवा क छाटे भाई थे।

भूषण की योग्यता के विषय में भी लोगों ने अनेक प्रकार के आक्षेप किये हैं। ये आक्षेप भी अनुचित हैं। भूषण की उपाधि ही आलंकारिक और उन्हें सामाजिक और राजनीतिक योग्यता के कारण दी गयी थी। भूषण की भावना वैदिक आधार पर ही प्रसरित हुई थी, अतः 'भूषण' शब्द में भी हमें वही ध्वनि निकलती हुई जान पड़ती है जो उनकी अलंकार सम्बन्धी तथा राजनीति विषयक कार्यकुशलता की परिचायक है। वे वास्तव में भारतीय समाज के भूषण थे।

उनकी कविता भी पर्याप्त थी, परन्तु उसमें से अधिकांश लुप्तप्राय है। केवल थोड़ी सी रचनाएँ ही प्रकाशित हुई हैं। 'शिवसिंह सरोज' में भूषण की रचनाओं में भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास का भी उल्लेख है, परन्तु ये तीनों ही ग्रन्थ अप्राप्त हैं। यदि भली प्रकार अन्वेषण किया जाय तो सम्भव है ये ग्रन्थ, जिनके अन्दर भारतीय समाज

की अपूर्व विभूति गर्भस्थ है प्राप्त हो जाँय। महाकवि भूषण के अतिरिक्त अन्य अनेक उत्तम कवियों की रचनाएँ भी खोज में प्राप्त हो सकती हैं। अतः प्रान्तीय सरकारों और देशी राज्यों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मुख्यतः हिन्दी भाषी प्रान्तों में सरकार का ध्यान इस ओर अवश्य जाना चाहिए। क्योंकि यह प्राचीन विभूति दिन-प्रति-दिन नष्ट होती जा रही है, जिसकी पूर्त्ति होना फिर सम्भव नहीं। इनके ग्रन्थों के संग्रह के काम में भी तत्परता की आवश्यकता है। ऐसे साहित्य से भारतीय इतिहास रचने मे भी बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है, क्योंकि बहुधा कवियों ने अपने आश्रयदाताओं का वर्णन उनकी विजयों और विशेष कार्यों के साथ किया है। उन रचनाओं से सामाजिक जीवन का भी आभास मिल जाता है। अतः हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह देश और समाज के लिए अवश्य हितकर सिद्ध होगा।

विद्वत्प्रवर काका कालेलकर महोदय ने भूषण सम्बन्धी एक विशेष उल्लेखनीय बात यह बतलायी कि भूषण सम्बन्धी विवरण बाजीराव पेशवा से पूर्व के साहित्य में नहीं मिलता। उनका उल्लेख पेशवा के समकालीन अथवा उनके पीछे के ग्रन्थों में ही पाया जाता है।

कर्नाटक के विषय में समाज में कई धारणाएँ प्रचलित हैं। ग्रान्ट डफ ने स्पष्ट रीति से कर्नाटक की चढ़ाई का उल्लेख पूर्वी मदरास के लिए किया है, जैसा भूषण ने वर्णन किया है। परन्तु दक्षिण में कुछ महाराष्ट्र लोग पूर्वी और पश्चिमी दोनों भागों को कर्नाटक के नाम से पुकारते हैं, जिसमें बीजापुर, गोलकुंडा, तंजौर तथा कृष्णा नदी के दक्षिण का पूरा प्रान्त भी माना जाता है। भूषण की रचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कर्नाटक प्रान्त से उनका आशय पूर्वी भाग से है जिसमें गोलकुंडा, तंजौर, जिंजी तथा कृष्णा नदी का दक्षिणी-पूर्वी भाग है।

दो-एक सज्जनों ने भूषण की रचना में कुछ दोष दिखलाये हैं। उनका शतांश भी भूषण में नहीं मिलता। न तो उन्होंने कहीं अश्लील रचना की है, न उन्होंने जातीय विद्वेष फैलाने का उद्योग किया है और न वे भिखमँगे ही थे। राजदरबारों में जो महान् सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ था, वही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे राष्ट्र के परम उन्नायक, समाज सुधारक, संगठनकर्त्ता और वैदिक धर्म के प्रसारक थे। मेरे विचार से विष्णुगुप्त चाणक्य के पश्चात् भारत में दो सहस्र वर्षों के भीतर भूषण के समान विभूति उत्पन्न ही नहीं हुई। उन्होंने समाज को एक नवीन आदर्श देकर सर्वांगीण उत्थान देने का सफल प्रयत्न किया था। उनकी कार्यप्रणाली भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन करती हुई सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और औद्योगिक उत्थान देने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती थी। देश में कर्मण्यता, आत्मनिर्भरता, सदाचार, कार्यदक्षता, गुणग्राहकता, सलग्नता और परिश्रम आदि सद्गुणों का अभाव हो गया था। उनके उद्धारक भूषण ही थे। पराधीनता में ग्रस्त भारतीय समाज दीन-हीन दशा में केवल ईश्वरीय भरोसे पर आश्रित हो रहा था। उसे भूषण ने अपनी वीररसमयी रचना द्वारा झटके देकर सैनिक और सुधारक रूप में लाकर खड़ा कर दिया था। भूषण के हृदय में जिस प्रकार उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणों का समावेश था, उसी प्रकार उनके मन में त्याग, उदारता, निस्पृहता, परोपकारिता आदि भाव भी जाग्रत हो रहे थे, जिसके प्रभाव से भूषण की रचना सर्वतोगामिनी और उनका प्रताप सर्वव्यापी हो रहा था।

भूषण की इस विचार-शृंखला का मूलाधार भगवान् शिवाजी थे, जिन्होंने औरंगजेब की धर्मान्धता, तअस्सुब, मक्कारी और चालबाज़ियों को खोल कर उनका नग्न रूप समाज के सम्मुख खड़ा कर दिया था और जो अपनी कार्यकुशलता से उसके बृहत्साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने में सफल हुए थे। जिस प्रकार शिवाजी में धार्मिक विरोध नहीं था उसी

प्रकार भूषण में भी नाममात्र को धर्मान्धता न थी। महाकवि भूषण ने शिवाजी के इसी आदर्श को समाज के सम्मुख रक्खा और उन्हीं के अनुकरण पर औरंगजेबी अत्याचार को दबाने के लिए भारतीय समाज का संगठन किया; जिसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि भूषण के जीवन-काल में ही मुग़लिया साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था और राष्ट्र का एक स्पष्ट स्वरूप सब के सामने दृष्टिगोचर हो रहा था। भूषण की इस महत्ता को अभी तक हिन्दी-भाषियों ने अनुभव ही नहीं कर पाया है।

भूषण की रचना और उनके कार्यों पर इस पुस्तक में विवेचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। यदि देश और समाज ने इसके द्वारा कुछ भी जागरण अनुभव किया और उसकी प्रगति में इससे कुछ भी सहायता मिली तो मैं अपने जीवन को सार्थक और अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

इस पुस्तक के रचने में मुझे जिन-जिन ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता मिली है, उनके लेखकों और सम्पादकों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मुख्यतः मित्रवर साहित्यरत्न पंडित उदयनारायण जी त्रिपाठी, एम० ए० ने इस पुस्तक के सम्पादन तथा प्रूफ देखने में अत्यन्त सहायता प्रदान की है, तदर्थ उन्हें हार्दिक धन्यवाद है। अन्त में परमात्मा से प्रार्थना है कि वह देश और समाज को सत्पथ का अनुगामी बनावे जिससे भारत एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो सके। विशेष किमधिकम्।

विद्यामन्दिर, लखनऊ
विजय दशमी, १९९५ वि०

निवेदक
भगीरथप्रसाद दीक्षित

विषय-सूची

भूषण-विमर्श

१—भूषण का जीवन-चरित्र

भ्रान्तियाँ

भारतीय इतिहास भ्रान्त-भरित भावों का भाण्डार बना हुआ है। अन्वेषण ने यद्यपि अनेक भ्रमपूर्ण बातों एवम् धारणाओं को हटाकर इतिहास का परिष्कृत रूप प्रत्यक्ष कर दिया है, परन्तु विद्वानों का ध्यान राजनीतिक घटना-चक्रों और राजवंशों की ओर ही अधिक आकर्षित हुआ है; कवियों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान ही नहीं दिया।

समाज में राजनीतिक क्रान्ति की अपेक्षा साहित्यिक क्रान्ति अधिक महत्वपूर्ण एवम् स्थायी होती है। उदाहरण के लिए, गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू समाज को जो जीवन प्रदान किया है, वह इतना प्रभावशाली और अमिट है कि सूर्यवत् अपने प्रकाश से अखिल भारतवर्ष को देदीप्यमान कर रहा है। इसी प्रकार महाकवि भूषण ने अपनी रचना द्वारा जो राजनीतिक

क्रान्ति की थी, वह समाज का मस्तक आज भी उन्नत किये हुए है। उसने हिन्दू जाति में एक विलक्षण स्फूर्ति, नवजीवन-ज्योति एवम् जाग्रति उत्पन्न कर दी थी। परन्तु जब ऐसे महान् व्यक्तियों का जीवन-चरित्र ही भ्रमपूर्ण बातों से परिपूर्ण है, तब दूसरों के विषय में क्या कहना!

ठाकुर शिवसिंह जी सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' की भूमिका के प्रारम्भ में ही लिखा है :—

"मैंने सम्वत् १९३३ विक्रमी में भाषा-कवियों के जीवन-चरित्र सम्बन्धी एक दो ग्रन्थ ऐसे देखे जिनमें ग्रन्थकर्त्ता ने मतिराम इत्यादि ब्राह्मणों को लिखा था कि वे असनी के महापात्र भाट हैं। यह सब बातें देखकर मुझसे चुप न रहा गया। मैंने सोचा, अब कोई ऐसा ग्रन्थ बनना चाहिए जिसमें प्राचीन और अर्वाचीन कवियों का जीवन-चरित्र सन्, सम्वत्, जाति, निवास-स्थान, कविता के ग्रन्थों समेत विस्तारपूर्वक लिखा हो।"*

इससे स्पष्ट है कि आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व से ही भूषण-मतिराम आदि कवियों के सम्बन्ध में बहुत ही अशुद्ध भ्रान्तियाँ फैली हुईं थीं। अनुसन्धान द्वारा इन भ्रान्तियों के निराकरण का प्रयत्न तो दूर रहा, इधर कई लेखकों ने तो भूषण के चरित्र पर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के घृणित आक्षेप आरोपित करके उन्हें जातीय विद्वेष फैलाने वाला, कामुक और लोलुप तक कह डाला

*शिवसिंह सरोज की भूमिका पृ० १

है भूषण सम्बन्धी अनेक किम्वदन्तियाँ है, जो उनके जीवन-चरित्र को अन्धकार में डाले हुए हैं। एक ही बात भिन्न-भिन्न रीति से कही जाती है। एक सज्जन अपने 'शिवराजभूषण' की भूमिका पृष्ठ ८ पर, बंगवासी प्रेम में छपी 'शिवाबावनी' का आधार लेकर चिन्तामणि का जन्म सम्वत् १६५८ और भूषण का सम्वत् १६७१ वि० मानते हैं। किन्तु 'हिन्दी नवरत्न' में भूषण का जन्म सम्वत् १६९२ वि० लिखा गया है।

एक दूसरे सज्जन उनका साहू के दरबार में जाना तक स्वीकार नहीं करते। 'शिवराजभूषण' के निर्माण-काल पर भी आपका गहरा मतभेद है। इसी प्रकार उनके भाइयों के सम्बन्ध में भी हिन्दी साहित्य के विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। लोगों को महा-कवि भूषण के असली नाम तक का पता नहीं है। उनका मूल निवास किस स्थान पर था; उनका जन्म काल क्या था, उनके कौन-कौन भाई थे; किन-किन परिस्थितियों में रहकर उन्होंने अपनी रचना द्वारा देश में नवजीवन-संचार किया था, उनका शिवाजी से क्या सम्बन्ध था; साधारण जनता पर उनकी रचना का क्या प्रभाव पड़ा था; राजाओं को किस प्रकार प्रोत्साहित करके उन्होंने उन्हें संगठित किया था; शिवाजी को ही उन्होंने अपना आदर्श क्यों माना था; उनके कौन-कौन आश्रयदाता थे तथा संगठन में पूर्णरूप से सफलता प्राप्त करने के लिए, इस महाकवि को क्या-क्या भगीरथ प्रयत्न करने पड़े थे—इन बातों

की विवेचना का प्रयत्न वैज्ञानिक ढंग से अब तक विद्वानों ने नहीं किया।

असली नाम

'भूषण' कवि का नाम नहीं है, उपनाम है। इनका असली नाम क्या है इसका ठीक-ठीक पता अभी तक विद्वानों को नहीं लग सका है।

सम्वत् १९८७ वि० के श्रावण मास के विशालभारत के एक लेख में इनका नाम 'पतिराम' बताया गया है, जो कि मतिराम के वजन पर ही लिखा गया प्रतीत होता है। मतिराम वास्तव में भूषण के सहोदर भाई न थे, जैसा कि आगे चल कर बतलाया गया है। मेरा अनुमान है कि भूषण का असली नाम "मनिराम" था। पहले मेरा अनुमान यह था कि जटाशंकर ही भूषण का असली नाम है, जैसा कि मैंने जुलाई १९३२ ई० की हिन्दुस्तानी पत्रिका में संकेत किया था, परन्तु इधर पंडित बद्रीदत्त जी पाण्डेय कृत 'कुमाऊँ के इतिहास' में वर्णित एक घटना से मुझे अपना पूर्व अनुमान बदलना पड़ा। इस इतिहास में राजा उद्योतचन्द का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है—

"सितारागढ़ नरेश साहू महाराज के राज कवि 'मनिराम' राजा के पास अलमोड़ा आये थे। उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था। राजा ने दस हजार रुपये तथा एक हाथी इनाम में दिया।"

यह छन्द इस प्रकार है :—

पुराण पुरुष के परम दृग दोऊ अहैं,
　　………कहत वेद बानी यों पढ़ गई,
ये दिवसपति वे निसापति जोतकर हैं,
　　काहू की बढ़ाई बढ़ाये ते न बढ़ गई;
सूरज के घर में करण महादानो भयो,
　　यहै सोचि-समुझि चितै चिन्ता मढ़ि गई,
अब तोहि राज बैठत उदोतचन्द चन्द* के,
　　कर्ण की किरक करेंजे सों कढ़ि गई।

इस छन्द में किसी कवि का नाम नहीं है। परन्तु प्रथम चरण मे तीन अक्षर कम है। भूषण नाम में भी तीन ही अक्षर है, अतः यह कहना अनुचित न होगा कि इस रिक्त स्थान पर से भ्रमवश भूषण नाम ही उड़ गया है। इसके अतिरिक्त सितारा-नरेश साहू महाराज के राजकवि भूषण ही थे और कोई दूसरा हिन्दी कवि उनके दरबार मे न था। प्रायः सभी विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है कि 'भूषण' तथा 'मतिराम' उद्योतचन्द के दरबार में गये थे।

छन्द की रचना-शैली और शब्द-विन्यास पर ध्यान देने से भी यही प्रमाणित होता है कि यह छन्द भूषण का ही है। ये

---

*कुमाऊँ का इतिहास पृ० ३०२.

महाकवि वैदिक संस्कृति तथा भावना के पक्षपाती थे। साथ ही ऐतिहासिक-विवेचन-पद्धति भी उनकी रचना की एक विशेषता थी। इसी प्रकार पौराणिक विचारों को भी वे सदैव नवीन रूप में ही उपस्थित किया करते थे। इन सब बातों का आभास उनकी कविता में मिलता है और वह इस छन्द में भी स्पष्ट रूप से झलक रहा है। यत्र-तत्र उसमें श्लेष और अन्योक्ति का पुट भी मिला रहता है और वह आपको यहाँ भी दिखलायी देगा। अतः स्वाभाविक रूप से कहा जा सकता है कि यह छन्द महाकवि भूषण का ही है; अन्य किसी कवि का नहीं और मनिराम ही भूषण का असली नाम है।

यहाँ पर तुलना के लिए 'फतह प्रकाश' से भूषण कृत छन्द उद्धृत है, जो श्रीनगर नरेश फतहशाह की प्रशंसा में ऊपर लिखे छन्द के कुछ समय बाद ही रचा गया है। महाकवि भूषण कुमाऊँ से प्रस्थान कर श्रीनगर (गढ़वाल) के दरबार में गये थे।

वह छन्द यह है :—

देवता को पति नीको पतिनी शिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ विरथ उर आनियो,
परम धरम को है सेइबो न व्रत नेम,
भोग को सँजोग त्रिभुवन जोग मानियो ;

'भूषन' कहा भगति न कनक मनि ताते,
विपति कहा बियोग सोग न बखानियो।
सम्पति कहा सनेह न गथ गाहिरो सुख
कहँ निरखिबोई मुकुति न मानियो।*

इन दोनों छन्दों पर विचार करने से विदित होता है कि दोनों में पौराणिक भावना एक सी ही है। इन्द्र और शिव की महत्ता बतलाते हुए तीर्थों का भ्रमण, व्रत, नेम आदि निरर्थक कहा गया है। इस छन्द के अन्तिम चरण में यह भी बतलाया गया है कि अगर गहरा प्रेम नहीं है, तो सम्पत्ति व्यर्थ की वस्तु है; केवल सुख ही मोक्ष नहीं है। इस छन्द में भी भूषण की वैदिक भावना स्पष्ट झलक रही है। साथ ही उनका संकेत उद्योतचन्द के दिये दान को त्यागने की ओर भी है, जैसा कि किम्वदन्ती रूप में हिन्दी जगत में प्रसिद्ध है। इस छन्द द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना भी एक मुख्य कार्य बतलाया गया है। प्रथम छन्द की भाँति इस छन्द में भी श्लेष का पुट स्पष्ट प्रतीत होता है।

उक्त दोनों छन्दों की शैली, भावना और शब्द-व्यंजना भी एक सी ही है। अतः उक्त प्रथम छन्द को भूषण कृत मानने में हमें कुछ भी हिचकिचाहट नहीं है। ऐसी दशा में यह भी मानना पड़ेगा कि 'मनिराम' ही महाकवि भूषण का असली नाम है

---

*फतह प्रकाश, सर्ग ४, छन्द १६४

और भूषण उनकी उपाधि है। ऐतिहासिक प्रमाण, समय, रचना—सब इस एक ही बात की साक्षी दे रहे हैं।

भूषण का जन्म-काल

भूषण के जन्मकाल पर हिन्दी संसार में घोर मतभेद है। किसी ने इनका जन्मकाल सं० १६७२ वि०, तो किसी ने सं० १६९२ वि० माना है। मिश्रबन्धु महोदय 'हिन्दी नवरत्न' तथा 'मिश्रबन्धु विनोद' में इनका समय सं० १६७२ वि० ही मानते हैं। परन्तु ठाकुर शिवसिंह सेंगर अपने "सरोज*" में चिन्तामणि का जन्म समय सं० १७२९ वि० और भूषण का जन्मकाल सं० १७३८ वि० लिखते हैं। काँथा (ठाकुर शिवसिंह सेंगर की जन्मभूमि) तिकमापुर (भूषण का निवास स्थान) से १५-२७ मील के ही अन्तर पर है। साहित्य के इतिहासों में उन्हें भूषण-मतिराम सम्बन्धी अशुद्धियाँ बहुत खटकी थीं। इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने 'सरोज' की भूमिका में किया है; इसलिए उनका दिया हुआ समय अधिक शुद्ध मानना पड़ेगा। वास्तव में 'शिवसिंह सरोज' की रचना ही भूषण-मतिराम के जीवन चरित्र को संशोधित कर परिष्कृत रूप देने के लिए हुई है। इससे प्रतीत होता है कि 'सरोज' में दिया गया भूषण तथा चिन्तामणि का यह जन्मकाल अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है।

साथ ही उनके कविता-काल, आश्रयदाता, उपाधिदाता तथा

---

*शिवसिंह सरोज पृ० ४१७

अन्य कार्यों तथा रचनाओं से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि भूषण का यह जन्मकाल नितान्त शुद्ध और ऐतिहासिक घटना-चक्रों के अनुरूप है। इसके लिए सर्व प्रथम इस बात पर विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है कि भूषण, मतिराम, चिन्तामणि तथा नीलकंठ में परस्पर क्या सम्बन्ध था ?

भूषण और मतिराम

जनश्रुति और कुछ लेखकों के भ्रम के कारण भूषण-मतिराम भाई भाई माने जाते है। उनके समय आदि के बारे में भी गहरा मतभेद है। तजकिरए सर्व आजाद, वंश भास्कर, शिवसिंह सरोज, मिश्रबन्धु-विनोद, साहित्य का इतिहास आदि अनेकों ग्रन्थों में यह भ्रम भरा हुआ है। अतः भूषण-मतिराम के निरूपण एवं बन्धुत्व सम्बन्धी भ्रान्तियों पर विवेचनात्मक दृष्टि डालना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

मतिराम के आश्रय-दाता तथा उनकी रचनाएँ

महाकवि मतिराम का समय रहीम काल से प्रारम्भ होता है। उनकी जो सबसे प्रथम रचना प्राप्त हुई है, उसमें रहीम के बरवै नायका भेद पर लक्षण पाये जाते हैं। रहीम का शरीरान्त संवत् १६८४ वि० में हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ७२ वर्ष की थी। 'बरवै नायका भेद' यदि रहीम ने ४०-४५ वर्ष की अवस्था में भी लिखा हो तो यह रचना संवत् १६५५ वि० के लगभग ठहरती है। सम्भवतः उसके ४-५ वर्ष पीछे मतिराम ने उस पर

लक्षण लिखे होंगे। अतः उनकी यह प्रथम रचना संवत् १६६० वि० के आस-पास की होगी। यदि उस समय मतिराम की अवस्था ३० वर्ष की भी मान ली जाय तो उनका जन्म संवत् १६३० वि० पड़ता है। लक्षण लिखने के ४-५ वर्ष पीछे ही खान-खाना द्वारा वे बादशाह जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुए होंगे। अतः फूलमञ्जरी का रचना-काल संवत् १६६५ वि० के समीप पड़ता है। पं० कृष्ण बिहारी जी मिश्र मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका में फूलमञ्जरी का रचना—काल संवत् १६७८ वि० मानते हैं। यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उस समय तो रहीम पर ही जहाँगीर की वक्र दृष्टि थी। ऐसी दशा में उनके आश्रित कवि पर बादशाह द्वारा उदारता प्रकट की जाने की बात दरबारी ढंगों के अनुकूल नहीं जान पड़ती।

इनके अतिरिक्त मतिराम के निम्नलिखित ग्रन्थ और पाये जाते हैं:—(१) रसराज (२) ललित ललाम (३) मतिराम सतसई (४) साहित्य सार ५) लक्षण शृंगार (६) छन्द सार पिंगल (वृत्त कौमुदी) (७) अलंकार पचाशिका।

इनमें से नं० १, २ व ३ के ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन ग्रन्थों में से ललित ललाम बूंदी नरेश भाऊसिंह के आश्रय में संवत् १७१५-३८ वि० के बीच किसी समय और मतिराम सतसई किन्हीं राजा भोगनाथ के लिए रची गयी है। अलकार पंचाशिका का निर्माण कुमाऊँ के राजकुमार ज्ञानचन्द्र के लिए संवत् १७४७ वि० में और छन्दसार पिंगल का निर्माण कुण्डार

पति स्वरूपसिंह बुन्देला के अर्थ संवत् १७५८ वि० में हुआ था ; शेष ग्रन्थों का रचना-काल अज्ञात है ।

पं० कृष्णबिहारी जी मिश्र ने मतिराम का एक छन्द भगवंत राय खीची के लिए भी रचा हुआ प्रकाशित किया है ।

वह छन्द यह है :—

दिल्ली के अमीर दिल्ली पति सों कहत वीर,
दक्खिन की फौज लैके सिंहल दबाइहौं ।
जाड़ती जजमेन की जेर कै सुमेर हू लौं,
सम्पति कुबेर के खजाने ते कढ़ाइहौं ।
कहै 'मतिराम' लंकपति हू के धाम जाइ,
जंग जुर जमहूँ कौं लोह सौं बनाइहौं ।
आगि में गिरेंगे कूदि कूप में परेंगे एक,
भूप भगवंत की मुहीम पै न जाइहौं ।*

असोथर नरेश भगवन्तराय खीची का समय संवत् १७७० वि० से संवत् १७९२ वि० तक है । इनमें से उनका मृत्यु समय संवत् १७९२ निश्चित है, क्योंकि इसी संवत् में वे सहादत खाँ से युद्ध करते हुए मारे गये थे† । भगवन्तराय खीची एक साधारण जमींदार के लड़के थे और अपने बाहुबल द्वारा एक

---

* माधुरी ज्येष्ठ, संवत् १९८१ वि०

† नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ९ अंक १

विशाल राज्य के अधिपति हो गये थे। अतः उक्त छन्द में वर्णित दशा संवत् १७८५ वि० के पश्चात् की ही हो सकती है, जब उन्होंने कोड़ा जहानाबाद के सूबेदार को मारकर वहाँ का राज्य हस्तगत कर लिया था। इसी अनुमान पर उक्त छन्द का समय निर्धारित किया जा सकता है। मतिराम ने "ललित ललाम" में एक छन्द यह भी लिखा है।

औरंग दारा जुरे दोऊ जुद्ध,
भए भट क्रुद्ध बिनोद विलासी।
मारू बजै मतिराम बखानै,
भई अति अस्त्रनि की बरखा सी।
नाथ तनै तिहि ठौर भिर्यौ,
जिय जानिकै छत्रिन कौं रन कासी।
सीस भयो हर हार सुमेरु,
छता भयो आपु सुमेरु कौ बासी।*

इसी प्रकार ललित ललाम के छन्द नं० १९५, २६० आदि में बड़े सम्मान के साथ बूंदी राजकुमार गोपीनाथ को 'नाथ' कहकर सम्बोधन किया गया है। इनके अतिरिक्त 'ललित ललाम' के छन्द नम्बर ३० में गोपीनाथ की, जो प्रशंसा की गयी है, उससे यही अनुमान होता है कि ये महाशय महाराजा भाऊसिंह के

* ललित ललाम, छन्द ३३

पिता महाराज कुमार गोपीनाथ के भी आश्रय में रहे होंगे। परन्तु हाड़ा छत्रशाल के समय में मतिराम का बूंदी में रहने का कुछ प्रमाण नहीं मिलता। सम्भव है, इस समय सम्मान कम होने अथवा अन्य कारण से वे वहाँ से चले आये हों और भाऊसिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर फिर बूंदी चले गये हों।

छन्द सार पिंगल में अपने आश्रयदाताओं का वर्णन करते हुए मतिराम ने एक छन्द लिखा है जो नीचे दिया जाता है:—

दाता एक जैसो शिवराज भयो तैसो अब,
फतेसाहि सीनगर साहिबी समाज है।
जैसो चित्तौर धनी राना नरनाह भयो,
तैसोई कुमाऊँ पति पूरो रजलाज है।
जैसे जयसिंह जसवन्त महाराज भए,
जिनको मही में अजौं बढ्यो बल साज है।
मित्र साहिनन्द सी बुन्देल कुल चन्द जग,
ऐसौ अब उदित स्वरूप महाराज है।*

इस छन्द में मतिराम ने अपने तीन आश्रय-दाताओं का उल्लेख किया है:—(१) श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहसाह, (२) कुमाऊँ पति उद्योतचन्द व ज्ञानचन्द और (३) कुडार

---

* वृत्त कौमुदी, सर्ग ४

अधीश्वर स्वरूपसिंह बुन्देला। इस प्रकार मतिराम के आश्रय-दाता निम्नलिखित ठहरते हैं:—

(१) अब्दुल रहीम खानखाना (रहीम कवि) सं० १६१३ वि० से १६८४ वि० तक

(२) बादशाह जहाँगीर, सं० १६६२ वि० से १६८४ वि० तक

(३) राजकुमार गोपीनाथ बूंदी, सं० १६८८ वि० से पूर्व

(४) महाराज भाऊसिंह (बूँदी नरेश) सं० १७१५ वि० से १७३८ वि० तक

(५) राजा भोगनाथ

(६) फतहशाह (श्रीनगर नरेश) सं० १७४१ से सं० १७७३ वि० तक

(७) उद्योतचन्द्र व ज्ञानचन्द्र (कुमाऊँ पति) सं० १७४५ वि० से १७६५ वि० तक

(८) कुंवार पति स्वरूपसिंह बुन्देला, सं० १७५८ वि० के लगभग

(९) भगवन्तराय खीची (असोथर नरेश) सं० १७७० वि० से १७९२ वि० तक

ऊपर की सूची और छन्दों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मतिराम का कविता समय सं० १६६० से प्रारम्भ होकर सं० १७९० वि० तक पहुँचता है। इस १३० वर्ष के दीर्घ काल तक एक कवि कदापि रचना नहीं कर सकता। अतः अवश्य दो मतिराम हुए हैं। 'ललित ललाम' ग्रन्थ भाऊसिंह के आश्रय में

रह कर रचा गया है; वह अधूरा है। उसमें सं० १७१८-१७१९ वि० तक की ही घटनाएँ आयी हैं। अतः अनुमान होता है कि प्रथम मतिराम का समय सं० १६६० वि० से सं० १७१९ वि० तक था।

रसराज, ललित ललाम और मतिराम सतसई के छन्द एक दूसरे में ओतप्रोत हैं। भाषा और शैली भी मिलती हुई है। अतः ये तीनों एक ही कवि की रचना हैं।

मतिराम ग्रन्थावली के सम्पादक महोदय ने उक्त ग्रन्थ की भूमिका पृष्ठ २२३ पर फतहशाह का समय सं० १७०० से १७१० वि० रखा है। ज्ञात नहीं इसका उनके पास क्या आधार है। गढ़वाल पति* फतहशाह का समय गढ़वाल गजेटियर में सं० १७४१ वि० से १७७३ वि० तक निश्चित है। इस पर हम आगे चलकर विशेष रूप से विचार करेंगे।

सं० १७१९ वि० तथा १७४७ वि० के बीच का कोई ग्रन्थ मतिराम का रचा नहीं मिला, इससे यही प्रतीत होता है कि प्रथम पाँच सज्जन—रहीम, जहाँगीर, गोपीनाथ, भाऊसिंह और भोगचन्द—ये प्रथम मतिराम के आश्रयदाता थे और उद्योतचन्द्र, ज्ञानचन्द्र फतहशाह, स्वरूपसिंह बुन्देला और भगवन्तराय खीची—ये पाँच आश्रयदाता दूसरे मतिराम के थे। इनमें से प्रथम चार का उल्लेख वृत्तकौमुदी के उक्त छन्द में आ गया है। भगवन्तराय खीची के दरबार में मतिराम पीछे गये थे, अतः उनका उल्लेख इस छन्द में नहीं किया गया। यहाँ इस बात की चर्चा करना भी असंगत नहीं

---

* गढ़वाल गज़ेटियर, पृ० ११८

है कि दोनों कवियों की रचनाओं में बहुत अन्तर है। भाषा और शैली दोनों में ही विभिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार दो भिन्न मतिरामों का होना निश्चित और प्रमाण-सिद्ध प्रतीत होता है।

भूषण और मतिराम की सम-सामयिकता

महाकवि भूषण और मतिराम के आश्रयदाताओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रथम मतिराम के आश्रयदाताओं (रहीम, जहाँगार, गोपीनाथ, भाऊसिंह और भोगनाथ) में से भूषण का एक भी आश्रयदाता नहीं है और न उनकी प्रशंसा का कोई छन्द ही मिलता है। इसके विरुद्ध दूसरे मतिराम के पाँच आश्रयदाताओं ( ) उद्योतचन्द्र, २ ज्ञानचन्द्र, (३) फतहशाह, (४) स्वरूपसिंह, बुन्देला और (५) भगवन्तराय खीची—में से उद्योतचन्द्र, ज्ञानचन्द्र, फतहशाह और भगवन्तराय खीची, ये चार भूषण के भी आश्रयदाता हैं। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि द्वितीय मतिराम ही भूषण के समकालीन थे, प्रथम नहीं; जैसा कि विहारीलाल कवि ने भी इन दोनों को सम सामयिक लिखा है।

भूषण और मतिराम का बन्धुत्व

मतिराम कृत छन्द सार पिंगल (वृत्त कौमुदी) की हस्तलिखित प्रतियाँ लाल कवि महापात्र (नरहरि कवि के वंशज) असनी*, जिला फतहपुर निवासी और पं० भवानीप्रसाद शर्मा

---

* खोज रिपोर्ट सन् १६२०-२२ नं० ११५

नारनौल, राज्य पटियालानिवासी के पास प्रस्तुत हैं, जिनका उल्लेख खोज-रिपोर्टों में भी आ चुका है। इसमें मतिराम का वंश-परिचय इस प्रकार दिया है :—

तिरपाठी बनपुर बसैं, वत्स गोत्र सुनि गेह ;
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह ।२१
भूमि देव बलभद्र हुव, तिनहिं तनुज मुनि गान ;
मंडित पंडित मंडली, मंडन मही महान ।२२
तिनके तनय उदार मति, विश्वनाथ हुव नाम ;
दुतिधर श्रुतिधर कौ अनुज, सकल गुननि कौ धाम ।२३
तासु पुत्र मतिराम कवि, निज मति के अनुसार ;
सिंह स्वरूप सुजान को, बरन्यौ सुजस अपार ।२४

इन्हीं प्रतियों में आश्रयदाता के सम्बन्ध में यह दोहा मिलता है :—

वृत्ति कौमुदी ग्रन्थ की सरसी सिंह स्वरूप ,
रची सुकवि मतिराम सो पढ़ौ सुनौ कविभूप ।*

महाकवि भूषण अपने को शिवराज भूषण के छन्द नं० २६ में कश्यपगोत्री रत्नाकर का पुत्र बतलाते हैं।

मतिराम के पन्ती बिहारीलाल ने विक्रमसतसई की रस-चन्द्रिका नामक टीका में अपना परिचय इस प्रकार दिया है :—

* छन्दसार पिंगल, सर्ग १

"हैं पन्ती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल।"
कश्यप वंश कनोजिया विदित त्रिपाठी गोत;
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत।*

इन तीनों (भूषण, मतिराम और बिहारीलाल) के वर्णनों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मतिराम वत्सगोत्री विश्वनाथ के पुत्र और भूषण कश्यपगोत्री रत्नाकर के पुत्र थे। अतः भूषण और मतिराम सहोदर कदापि नहीं हो सकते। वे तो एक गोत्र के भी नहीं हैं, फिर बन्धुत्व कैसा ?

यहाँ पर एक यह शंका अवश्य उत्पन्न होती है कि मतिराम तो अपने को वत्सगोत्री कहते हैं, परन्तु उनके पन्ती बिहारीलाल अपने को कश्यपगोत्री बतलाते हैं। इसका क्या कारण है ?

मतिराम के वंशज तिकमापुर के समीप सँजेती और बाँद नामक गाँवों (जिला कानपुर) में रहते हैं। वे सब अपने को कश्यपगोत्री बछई के तिवारी कहते हैं। उनके यहाँ से जो कान्यकुब्ज-वंशावली प्राप्त हुई है, उसमें भी बछई के तिवारी कश्यपगोत्र के अन्तर्गत हैं। इससे स्पष्ट है कि मतिराम और उनके वंशज वास्तव में कश्यपगोत्री हैं। इस दशा में फिर यह प्रश्न होता है कि मतिराम ने कश्यपगोत्री होते हुए भी अपने को वत्सगोत्री क्यों लिखा ? इसका कारण यही प्रतीत होता है कि बछई 'वत्स' का अपभ्रंश रूप है, अतः उन्होंने बछई को वत्स रूप देकर

* विक्रमसतसई, प्रथम शतक

अपने को शुद्ध और परिष्कृत रूप मे लाने का प्रयत्न किया है। कान्यकुब्जों में आज भी निम्न कोटि के कनौजिया उच्च वंश मे होने के लिए आस्पद और गोत्र बदल लेते हैं। मतिराम में भी सम्भवतः वही भावना काम करती हुई प्रतीत होती है।

विहारीलाल कवि का

"कश्यप वंश कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत,"

छन्दांश भी मतिराम की उक्त भूल का मार्जन करता हुआ प्रतीत होता है; अन्यथा कश्यप-गोत्र और त्रिपाठी-वंश लिखना युक्ति-युक्त होता। 'त्रिपाठी गोत' से कवि बछई' के त्रिपाठी की ही ओर सकेत कर रहा है और कश्यप-वंश उसका पूरक बन कर यहाँ बैठा है। इस प्रकार पन्ती विहारीलाल ने अपने पितामह मतिराम की त्रुटि का प्रक्षालन कर अपने को पुनः परिष्कृत रूप में लाने की कोशिश की है। इस विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम मतिराम भूषण के जन्म से बहुत पहले मर चुके थे और द्वितीय मतिराम भूषण के समकालीन होते हुए भी उनके सहोदर न थे।

चिन्तामणि और नीलकंठ

यह बात प्रसिद्ध है कि भूषण चार भाई थे। शिवसिंहसरोज और मिश्रबन्धुविनोद दोनों इस विषय में एकमत हैं। मतिराम के सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि वे भूषण के समकालीन होते हुए भी उनके सहोदर न थे। अब यह प्रश्न उठता है कि अन्य दो

भाई—चिन्तामणि और नीलकंठ—के सम्बन्ध में उक्त कथन कहाँ तक सत्य है।

चिन्तामणिकृत पिंगल की एक प्रति मुझे नारनौल, राज्य पटियाला में प्राप्त हुई थी। उसमें निर्माणकाल का दोहार्द्ध इस प्रकार दिया हुआ है :—

"कहत अंक मनि दीप द्वै जानि बराबर लेहु।"*

इसके अनुसार पिंगल का निर्माणकाल सं० १७७९ वि० ठहरता है। यह पिंगल ग्रन्थ मकरन्दशाह भौंसला के लिए रचा गया था।

जिस प्रकार भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में शिवराज-भूषण उनके मरने के पीछे सं० १७६९ वि० में रचा था, उसी प्रकार चिन्तामणि ने इस पिंगल ग्रन्थ की रचना शिवाजी के पितामह मकरन्दशाह के लिए सं० १७७९ वि० में की थी। इस पिंगल ग्रन्थ में शाहू का नामोल्लेख होने से उक्त विचार की और भी पुष्टि हो जाती है। सं० १७७९ वि० में पिंगल के निर्माण-काल के समय छत्रपति शाहू का राज्य-काल होने से इस विचार में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

चिन्तामणिकृत 'रामाश्वमेध' के भी कुछ पृष्ठ मुझे अन्वेषण में मिले थे, जिनसे इनका कश्यपगोत्री, मनोह के तिवारी

---

* पिंगल हस्तलिखित प्रति, पृ० १

होना सिद्ध होता है। इसमें से निर्माणकाल का वर्णन फट गया है।*

चिन्तामणि ने बिजौरा-नरेश बाबू रुद्रशाह की प्रशंसा में यह छन्द कहा था :—

प्रबल प्रचंड महाबाहु बाबू रुद्रसाहि,
तो सों वैर रचत बचत खलकत है।
गहि करवाल काटि काढ़न द्रवन दल,
सोनित समुद्र छिति पर छलकत है।
चिन्तामनि भनत भखत भूतगन मास,
मेद गूद गीदर औ गीध गलकत हैं।
फाटे करि कुम्भन में मोती दमकत मानों,
कारे लाल बादल में तारे झलकत हैं।†

इन बर्दी-नरेश रुद्रशाह के विषय में रीवा राज्यदर्पण के पृष्ठ ३३४ पर लिखा है :—

"रंजीत देव की बीसवीं पीढ़ी में हरिहरशाह नामक अगारी का राजा हुआ और रुद्रशाह नाम का उसका छोटा भाई था, जिसको अपने हिस्से में बिजौरा इलाका मिला था। उसने अपनी राजधानी गढ़वा गाँव में स्थापित की थी और उसके दो उत्तरा-

---

* माधुरी, वर्ष २, खंड २

† माधुरी, वर्ष २, खण्ड २, अङ्क ६, पृष्ठ ७८३

यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि रीवाँ गजेटियर में वर्णित रंजीतदेव से बाघराज तक ४० पीढ़ियाँ अशुद्ध हैं, क्योंकि इससे प्रत्येक पीढ़ी का साधारण औसत ठीक नहीं बैठता और न निश्चित व्यक्ति के निर्धारित समय का मिलान ही ठीक-ठीक घटित होता है। अतः यह समय नितान्त अशुद्ध है। इसके मुक़ाबिले में रीवाँराज्यदर्पण का कथन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है, क्योंकि उसका औसत अन्य ऐतिहासिक घटनाओं से ठीक-ठीक मिलान खा जाता है और निश्चित समय में भी कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

चिन्तामणि के एक आश्रयदाता सैयद रहमतुल्ला बिलग्रामी थे। इनका समय सं० १७४५ वि० के पश्चात पड़ता है।*

इन अवतरणों से प्रतीत होता है कि इन चिन्तामणि का समय भी वही है, जो महाकवि भूषण का था। इसके विपरीत 'प्रबोध रस सुधासर' नामक ग्रन्थ में अन्य कवियों के साथ दूसरे चिन्तामणि का भी उल्लेख आया है। इनके आश्रयदाता बूँदी-नरेश भाऊसिंह, बादशाह शाहजहाँ का पुत्र शाहशुजा और शाह-शुजा का पुत्र जैनुद्दीन मोहम्मद बतलाया गया है।

जयपुर-नरेश रामसिंह की प्रशंसा में भी इनका एक छन्द प्राप्त हुआ है।†

---

* समालोचक, भाग २, संख्या १-२, संवत् १९८२-१९८३ और तज़किरए सर्व आज़ाद।

† माधुरी आषाढ़, संवत् १९८१, पृष्ठ ७३४ ४४

धिकारी भी वहीं रहे। अठारहवीं शताब्दी में राजा मयूरशाह ने, जो परमाल से २४ वी पीढ़ी पर था, गढ़वा परित्याग कर अपनी राजधानी सोन और गोपद नदियों के संगम पर वर्दी नामक ग्राम में बनवायी।"

रीवाँ गज़ेटियर में लिखा है :—

Bodhraj, the younger brother of Rao Ratan, 40th in descent from Ranjit Deo, received as his share the village of Bhopuri, ...Bodhraj had two sons, Sarnam Singh and Fojdar Singh. In 1810, Dalganjan Singh, a step-brother of the Raja Manda, who lived in the Mirzapore district, committed a heinous offence. To escape arrest, he took refuge with Sarnam Singh.

[Rewa State Gazetteer, pp. 88.0

प्रथम अवतरण से ज्ञात होता है कि रुद्रशाह परमाल से २१ वीं पीढ़ी पर था। परमाल का समय संवत् १२४० वि० निश्चित है। रुद्रशाह से दो पीढ़ी पश्चात मयूरशाह ईसवी सन् की अठारहवीं शताब्दी में था। अतः रुद्रशाह का समय संवत् १७५० वि० के आस-पास पड़ता है। शिवसिंह सेंगर ने चिन्तामणि का जन्म संवत् १७२९ वि० माना है। इससे भी उक्त मिलान ठीक बैठता है।

इन चारों आश्रय-दाताओं का समय सं० १७०० वि० से सं० १७३८ वि० तक पड़ता है। अतः चिन्तामणि प्रथम का समय भी इसी बीच में होना चाहिए।

चिन्तामणि द्वितीय की रचना संवत् १७५० वि० से प्रारम्भ होती है। महाकवि भूषण का भी यही समय है, अतः ये दूसरे चिन्तामणि और भूषण समकालीन ठहरते हैं।

मतिराम के पन्ती विहारीलाल कवि ने अपने ग्रन्थ विक्रम सतसई की रसचन्द्रिका नामक टीका में भूषण, चिन्तामणि और मतिराम के बनपुर से तिकमापुर में साथ-साथ आ बसने का उल्लेख किया है। इस वर्णन में भूषण और चिन्तामणि का एक साथ कथन होने से इन दोनों के पारम्परिक सम्बन्ध अथवा भ्रातृत्व का अनुमान होता है। साथ ही साथ भूषण और चिन्तामणि का गोत्र आदि एक होने तथा साथ-साथ रहने से भी यही प्रतीत होता है कि ये दोनों भाई-भाई थे। यह बात अनेकों ग्रन्थकारों ने स्वीकार की है। इसके विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिलने से हम भी इस भ्रातृत्व को स्वीकार करते हैं। 'तजकिरए सब आजाद' और वंशभास्कर भी इसी बात का समर्थन करते है।

अब रहे नीलकंठ कवि। इन्होंने पौरच नरेश अमरेश के लिए अमरेश-विलास की रचना सं० १७६८ वि० में की थी।*

---

*नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी की खोज-रिपोर्ट, सन् १९०३, नं० १

ये महाशय श्रीनगर-नरेश फतहशाह के दरबार मे भी रहे थे,❀ जिनका समय सं- १७४१ वि० से१७७३वि० तक था।

श्रीनगर-नरेश की प्रशंसा में फतहप्रकाश नामक ग्रन्थ रतन कवि ने बनाया था, जिममे नीलकठ के अनेकों छन्द उद्धृत हैं। अतः निश्चित है कि नीलकंठ का समय भी यही है। इससे ये भूषण और मतिराम के समकालीन भी ठहरते हैं, परन्तु बिहारीलाल कवि के बनपुर से तिकमापुर बसनेवालों में इनका उल्लेख नहीं किया और न तज़किरए सर्व आज़ाद और वंश-भास्कर में ही इन्हे भूषण, चिन्तामणि अथवा मतिराम का भाई बतलाया गया है।

शिवाजी नामक ग्रन्थ के लेखक ने भी इन्हें उक्त तीनों कवियों का भाई नहीं कहा, इसलिए हम भी नीलकंठ को भूषण का भाई मानने में असमर्थ है। इस प्रकार बन्धुत्व की इस विचार-धारा मे केवल भूषण और चिन्तामणि ही सहोदर माने जा सकते हैं।

चूँकि भूषण, चिन्तामणि और मतिराम तीनों बनपुर से तिकमापुर मे आ बसे थे, इसलिए इन तीनों के बन्धुत्व की वास्तविकता में अन्तर आ गया। वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान न होने से केवल किंवदन्ती के आधार पर इनकी बन्धुत्व की भावना का प्रसार होता रहा जो साहित्य के इतिहास को अन्धकार की हो ओर बढ़ाती रही।

❀ गढ़वाल गज़टियर, पृष्ठ ११८

भूषण की जन्मभूमि तथा निवास-स्थान

भूषण का निवास-स्थान तो साधारणतया पाठकों को ज्ञात है; परन्तु उनकी जन्मभूमि का उन्हें पता नहीं है। अब तक हिन्दी-संसार तिकमापुर को ही उनकी जन्मभूमि और निवास-स्थान मानता चला आ रहा है; परन्तु अन्वेषण से वे स्थान भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।

भूषण ने अपने निवास-स्थान का इस प्रकार वर्णन किया है।

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर ;

बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनितनूजा तीर। शि० भू०, २६

महाकवि मतिराम अपने ग्रन्थ छन्दसार पिंगल (वृत्त-कौमुदी) में अपने निवास-स्थान का परिचय इस प्रकार देते हैं :—

तिरपाठी बनपुर बसै, वत्सगोत्र सुनि गेह ;

विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह। ❀

वृत्तकौमुदी ग्रन्थ का निर्माणकाल यह है :—

संवत् सत्रह सौ बरस, अट्ठावन शुभ साल ;

कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी, करि विचार तिहि काल। †

❀ वृत्तकौमुदी, प्रथम सर्ग, छं० २१

† छन्दसार पिंगल (वृत्तकौमुदी) पृष्ठ १-५

मतिराम के पन्ती कवि बिहारीलाल ने भी अपने निवास-स्थान और पूर्वजों का वर्णन 'विक्रमसतसई' की रत्नचन्द्रिका नामक टीका में इस प्रकार किया है :—

बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर ;
विरच्यौ वीर हमीर जनु, मध्य देश को हीर।
भूषण चिन्तामनि तहाँ, कवि भूषण मतिराम ;
नृप हमीर सम्मान ते, कीन्हों निज-निज धाम।*

यह टीका संवत् १८७५ वि० में रची गयी थी। इन तीनों उद्धरणों पर विचार करने से विदित होता है कि 'वृत्तकौमुदी' की रचना के समय स १७५८ वि० तक मतिराम, भूषण आदि बनपुर मे रहते थे। उसके पश्चात भूषण, चिन्तामणि तथा मतिराम बनपुर से त्रिविक्रमपुर (तिकमापुर) में आ बसे थे, (जैसा कि बिहारीलाल कवि लिखते हैं) और शिवराजभूषण की रचना के समय स० १७६९ वि० में तीनों कवि तिकमापुर में ही निवास करते थे (जैसा कि आगे चल कर सिद्ध किया जायगा) । अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भूषण कवि की जन्मभूमि बनपुर थी और निवास-स्थान त्रिविक्रमपुर, जिला कानपुर था।

---

* विक्रमसतसई की रसचन्द्रिका टीका, प्रथम शतक तथा माधुरी, ज्येष्ठ, सं० १९८१ वि०।

भूषण-कालीन परिस्थिति

महाकवि भूषण की महत्ता को ठीक-ठीक अनुभव करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि हम तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करें। जिस समय भूषण (मनिराम का बनपुर में जन्म हुआ था, उससे कुछ मास पूर्व ही छत्रपति शिवाजी का शरीरान्त हो चुका था। उस समय दिल्ली के तख्त पर औरंगजेब बादशाह था। वह अपनी साम्प्रदायिक कट्टरता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उसने ऐसी नीति का अवलम्बन किया था, जो मुग़ल बादशाहों की भावना के नितान्त प्रतिकूल थी। अकबर बादशाह* ने जिस दृढ़ नींव पर हिन्दू-मुसलमान ऐक्य-रूपी भित्ति को स्थापित किया था, उसे औरंगजेब† ने साम्प्रदायिक-पक्षपातरूपी डेनामाइट से भूमिसात कर दिया था।

उसने हिन्दुओं पर ऐसे अत्याचार किये थे कि सम्भवतः एक भी हिन्दू ऐसा न था जो उसे हृदय से चाहता हो! परन्तु उसके दबाव के कारण सम्पूर्ण हिन्दू राजे उसकी मातहती करना अपना सौभाग्य मानते थे, यद्यपि उसने हिन्दुओं पर जजिया‡

---

* अकबर की राजव्यवस्था।

† औरंगज़ेब, भाग ३, पृष्ठ २६५

‡ हिन्दुओं पर जज़िया (हिन्दू होने का कर) लगाया गया और मुसलमानों से दूनी कस्टम लेने का हुक्म दिया गया। हिन्दू लोग सार्वजनिक दफ़्तरों से हटा दिये गये। मुसलमान बनाने के लिए रिश्वत

फिर जारी कर दिया था। उसने जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह* को अफ़ग़ानिस्तान में अफ़ग़ानों को दबाने के लिए भेजा, परन्तु उसे कोई सहायता न भेजकर तथा मुग़ल सरदारों से आश्रयहीन बनाकर कुत्ते की मौत मरने दिया और उसके लड़कों को विष देकर मरवा डाला, परन्तु गर्भस्थित अजीतसिंह राजकुमार की माँ को स्वामिभक्त सरदार दुर्गादास किसी प्रकार बचा कर निकाल ले गया। जयपुर-नरेश मिर्ज़ा जयसिंह † को भी विष दिलवा कर, उसने दक्षिण में ही उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करवा दी थी तथा उनके राजकुमारों को भी क्रूर काल के हवाले कर, वही दुर्दशा करवा डाली थी। सहस्रों मन्दिर‡ ध्वस्त कर

दी जाती थी और यह फरमान निकाला गया था कि ग़ैर मुस्लिम नागरिक नहीं हो सकते; वे अछूत हैं। ग़ैर मुस्लिम होना सामाजिक और राजनैतिक अयोग्यता थी। [औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० २५१ और २६८-७८

* जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ राजकुमार पृथ्वीसिंह को जहरीली पोशाक पहना कर औरंगज़ेब ने मरवा डाला। [टाड राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५०

† मिर्ज़ा जयसिंह को औरंगज़ेब ने उनके दूसरे राजकुमार कीर्तिसिंह द्वारा ज़हर दिलवा कर मरवा डाला था। उनको जयपुर की गद्दी का लालच दिया गया था, पर अन्त में उन्हें कामा परगना दिया गया। इस प्रकार औरंगज़ेब ने अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़ी थी [टाड राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ३४२

‡ मन्दिर तोड़ने की आज्ञा ६ एप्रिल सन् १६६६ को दी। औरंगज़ेब, भाग ३, पृष्ठ २६७ व २८२

मसजिदों के रूप में परिणत किये जा चुके थे। इतना ही नहीं, मथुरा में केशवराय का देहरा और काशी में विश्वनाथ का मन्दिर तुड़वा कर क्रमशः जामा और ज्ञानवापी मसजिदों के रूप में परिवर्तित किये जा चुके थे। निरीह सतनामी* साधुओं का क़त्लेआम करवा दिया गया था। बचे हुए लोगों को बलात मुसलमान बना लिया गया था। सिक्खों पर भी ऐसे अत्याचार हुए कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनके गुरु तेगबहादुर † को फाँसी दे दी गयी और गुरु गोविन्दसिंह ‡ के दो बच्चे लड़ाई में मारे गये और दो मासूम बच्चे दीवार में चिनवा दिये गये। गुरु बन्दा§ को पिंजड़े में बन्द करके मांस नुचवाया गया। सम्पूर्ण हिन्दू-जाति त्रस्त और भयभीत होकर अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही थी। ये अत्याचार राजा लोग अपने चर्म-चक्षुओं से देख रहे थे; परन्तु किसी को कुछ कहने का साहस न होता था।

हिन्दुओं में धर्म-कर्म और पूजा-पाठ का अभाव§§ हो चला

---

* प्रसिद्ध इतिहासकार खाफ़ीखाँ लिखता है, 'सतनामी बड़े सदाचारी थे। दुराचार अथवा अनुचित रीति से धन लेना वे पाप समझते थे। [औरगज़ेब, यदुनाथ सरकार-कृत, पृष्ठ २६८

† औरंगज़ेब, भाग ३, पृष्ठ ३१२-३

‡ औरंगज़ेब, भाग ३, पृष्ठ ३१६-२०

§ सिक्खों का इतिहास

§§ औरंगज़ेब, भाग ३ पृष्ठ २६७

था। शंख बजाना एक अक्षम्य अपराध माना जाता था। तिलक लगाकर नागरिकों का सड़कों पर चलना कठिन हो गया था। बहू-बेटियों का सतीत्व खतरे में था। इसी के फलस्वरूप 'शीघ्रबोध' जैसे ग्रन्थों की रचना हुई थी जिसमें सात-आठ वर्ष की लड़कियों का विवाह कर देना भी बड़ा भारी पुण्य कर्म बताया गया।

औरंगजेब ने केवल हिन्दुओं पर ही अत्याचार नहीं किये, वरन् अपने परिवारवालों तथा शिया लोगों पर भी अमानुषीय कृत्यों की पराकाष्ठा कर दी थी। उसने सूफी विचार रखनेवाले अपने बड़े भाई दारा* को पकड़ कर जान से मरवा डाला और उसके शव को शहर भर में घुमाया। उसके लड़के† की भी वही दशा की गयी। उसने अपने छोटे भाई मुराद‡ को हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया और तीसरे भाई शुजा§ को मार कर अराकान के जगलों में भगा दिया, जहाँ उसे शेर खा गया। उसके कार्यों का यहीं अन्त नहीं हुआ। वह अपने बाप शाहजहाँ§§ बादशाह को गद्दी से उतार कर स्वयम् गद्दी पर बैठा और उसे आगरे के किले में बन्दी कर दिया। वह बेचारा वहीं सात वर्ष तक जेल की यातना भुगत और पानी के लिए तरस-तरस

* औरंगज़ेब, भाग २, पृष्ठ १८६-२२०

† औरंगज़ेब, भाग २, पृष्ठ २२६

‡ औरंगज़ेब, भाग २, पृष्ठ ६३-१००

§ औरंगजेब, भाग २, पृष्ठ २८७-८८

§§ औरंगजेब, भाग ३, पृष्ठ ७,१२३ व १३६-१४१

कर परलोक सिधारा। उसने शिया राज्यों (बीजापुर* और गोलकुंडा†) को तहस नहस करने में कुछ भी कोताही नहीं की। उसने मुसलमान फकीर शाहमोहम्मद की भी बड़ी दुर्दशा की और साधू सरमद को फाँसी दिलवा दी‡। इस प्रकार उसके अत्याचार एवं नृशंसता के कारण सर्वत्र प्रजा त्रस्त और दुखी थी।

दूसरी ओर हिन्दू जाति में घोर नैराश्य और वैराग्य छाया हुआ था उनके पिटने और पद दलित होने पर भी संत कवियों की वाणी शान्त रहने का आदेश देती थी। गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास की रचना भी इस विषय में हमारी अधिक सहायता न कर सकी। उनके द्वारा समाज से निराशा तो दूर हुई और उसका मन भी संसार से हटकर भगवद्भक्ति की ओर फिरा; परन्तु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से संगठन और राष्ट्रीय भावना का प्रसार न हो पाया। केवल राम और कृष्ण के सहारे सारे कार्यों की पूर्ति का भरोसा किया जाता था। शत्रु को दबाने तथा अत्याचार से संरक्षण पाने के लिए किस प्रकार का साहस और अध्यवसाय चाहिए, इसका वहाँ नितान्त अभाव था। श्रीराम ने रावण को मारने के लिए जो प्रयत्न किये थे, उनमें भगवान की अननुभूत और अलौकिक शक्तियों का आश्रय लिया गया है।

* औरंगज़ेब, भाग ४ पृष्ठ ३२३-३२९

† औरंगज़ेब, भाग ४, पृष्ठ ३४६-३६६

‡ औरंगज़ेब, भाग ३, पृष्ठ ९४-१००

इसके लिए गोस्वामी तुलसीदास जी समय-समय पर शक्ति-सम्पन्न राम को सर्व शक्तिमान् ब्रह्म के अवतार रूप में पाठकों के सामने रखते हैं। सूरदास की रचना में भी लोक-कल्याण और सामाजिक उत्थान की भावना राष्ट्रीय रूप में कहीं दिखलायी नहीं देती। इन सत कवियों के द्वारा वैराग्य, त्याग, जगत-मिथ्या-भावना, साँसारिक-जीवन दुःखमय आदि भावों को ही उत्तेजन मिल रहा थी। केवल मोक्ष पाने की धारणा ही प्रबल थी। इन विचारों के कारण भारतीय समाज से उत्साह, जीवन, और उत्कर्ष का नितान्त तिरोभाव हो गया था। दुःखी, असमर्थ और अज्ञानी मनुष्य जिस प्रकार मृत्यु काल में अपनी अंतिम घड़ियाँ पूर्ण करने का प्रयास करता है, वही दशा इस प्राचीन आर्य जाति की हो रही थी। महाकवि भूषण के जन्म काल में ये ही भावनाएँ कार्य कर रही थीं।

इस दशा से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय देश पर औरङ्गज़ेब का भय तथा आतङ्क छाया हुआ था। पालने में झूलते हुए भूषण के मानसपटल पर ये ही धारणाएँ अङ्कित हो रही थीं। ज्यों ज्यों वे बड़े होते जाते थे, उनके चित्त में साम्राज्य-विरोधी भाव जाग्रत हो रहे थे। उसके प्रतिशोधार्थ उनमें उत्साह, जोश, और उत्तेजना बढ़ती जा रही थी। औरंगज़ेबी अत्याचारों को देखकर उनके हृदय पर एक गहरी ठेस लगी और वे उनके प्रतिकार का उपाय सोचने लगे।

छत्रपति शिवाजी* ने दक्षिण मे औरङ्गज़ेब की अनीतिपूर्ण

*मराठा पीपिल (Maratha People) भाग १ और २

राज्य-प्रणाली एवम् अत्याचार परिवर्द्धित हिन्दू-शिया विरोधी प्रवाह का नितान्त अवरोध कर दिया था। उसका आतंक औरंगजेबी सूबेदारों* तथा सरदारों पर ऐसा छा गया था कि वे दक्षिण में जाने तक का साहस न करते थे। परन्तु उसकी मृत्यु हो जाने से औरंगजेब ने दक्षिण में भी वे ही ढङ्ग बरतने प्रारम्भ कर दिये जो उत्तरी भारत में चल रहे थे। शिवा जी का ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी† अपने पुत्र साहू‡ सहित बादशाही सेना के हाथ में पड़ गया। बादशाह ने अत्यन्त निर्दयता के साथ उसका बध करा दिया§। उस समय शाहू केवल आठ वर्ष का बालक था। औरंगजेब की मृत्यु तक वह क़ैद में ही रहा। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् औरंङ्गजेबी शासन अत्याचार एव नृशंसता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। साम्राज्य-विरोधी शक्तियाँ यत्र-यत्र बिखरी पड़ी थीं। सङ्गठन न होने से उन में उस नृशंसता का प्रतिशोध और अत्याचारों का अवरोध करने का साहस ही न था। इन्हीं भावनाओं के अन्तर्गत रह कर भूषण ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि औरंङ्गजेबी अत्याचारों से देश और समाज की रक्षा करने के लिए जाति को सुसंगठित किया जाय और उत्तेजन देकर उद्बुद्ध कर दिया जाय।

---

* शिवाज़ी, यदुनाथ सरकार कृत

† औरङ्गज़ेब, भाग ४, ३९९-४०१

‡ औरंगज़ेब, भाग४, पृ० ४०६

§ सम्भा जी को, एक-एक अङ्ग काट कर, बड़ी बेदरमी से मरवाया गया और उनका माँस कुत्तों को खिलाया गया। [औरङ्गज़ेब, भाग ४, पृ० ४०२

२—शिवराज भूषण का निर्माण-काल

शिवराज भूषण अलंकार का ग्रन्थ है। उसमें शिवाजी की प्रशंसा फुटकर छन्दों द्वारा उदाहरणों के रूप में की गयी है। यह ग्रन्थ शिवाजी के दरबार में रह कर कदापि नहीं लिखा गया। उसमें वह प्रणाली ही नहीं है, जिसे दरबारी कवियों ने प्रयुक्त किया है। विद्यापति निर्मित 'कीर्तिलता', केशवदास कृत 'वीर-सिंह देव चरित', लाल का रचा 'छत्र प्रकाश', सूदन का 'सुजान-चरित्र' तथा पद्माकर विरचित 'हिम्मत बहादुर विरुदावली 'आदि बीसों ग्रन्थ इस प्रणाली के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। शिवराज भूषण में न तो ऐतिहासिक क्रम है, न घटना चक्रों का ही कोई सिल-सिला है, और न जीवनचरित्र का क्रम-विकास ही दृष्टिगोचर होता है। जनता में केवल उत्साह-वर्द्धन करने और सङ्गठन तथा उत्तेजना फैलाने के लिए ही फुटकर छन्दों के रूप में इसके छन्द रचे गये हैं। फिर उन्हीं छन्दों में से कुछ अलङ्कारों के उदाहरणों में संगृहीत कर दिये गये हैं।

शिवराज भूषण का निर्माण काल संवत् १७३० वि० माना जाता है। इस सम्बन्ध में अब तक निम्नलिखित छन्द पाये गये हैं।

(१) शुभ सत्रह सै तीस पर बुध सुदि तेरसि मान ;
भूषण शिवभूषण कियौ पढ़ियो सुनौ सुग्यान ।❀

(२) संवत् सत्रह सै तीस सुचि बदि तेरसि मान ;
भूषण शिवभूषण कियो पढ़ियो सकल सुजान ।†

(३) संवत् सतरह बीस पर सुचि बदि तेरसि मान ;
भूषण शिवभूषण कियो पढ़ियो सकल सुजान ।‡

संवत् के ये तीनों दोहे गणित के विचार से ठीक नहीं बैठते। प्रथम दोहे में महीने का नाम न होने से जाँच ही नहीं हो सकती और न उसे शुद्ध ही कहा जा सकता है। यह प्रथा समय-निर्माण के विरुद्ध भी है।

दूसरे दोहे में बार नहीं है, अतः वह भी परीक्षा-कोटि में नहीं आ सकता, और इसलिए प्रथम की भाँति ही भ्रमपूर्ण है।

तीसरा दोहा 'साहित्य सेवक कार्यालय काशी' की प्रति में प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त किसी प्रति में "शुचि वदि तेरसि मान," पाठ नहीं है। पुस्तक में उल्लेख भी नहीं है कि यह पाठ कहाँ से लिया गया है।

❀ काशी राज के पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति, छन्द ३८०

† शिवराजभूषण, छन्द ३८०, नागरी प्रचारिणी सभा काशी की प्रति

‡ साहित्य सेवक कार्यालय, काशी से प्रकाशित शिवराज भूषण छं० ३८२

इस प्रति के सम्पादक वर्ग स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी के अनुयायी हैं और उन्हीं के स्कूल को मानते हैं, जो पाठ में खराद के पक्षपाती थे। किसी प्राचीन प्रति में यह पाठ नहीं है, इसलिए अनुमान होता है कि यह संशोधन सम्पादकों द्वारा किया गया है। जनवरी सन् १९३४ ई० की सुधा में पण्डित अम्बिका प्रसाद जी बाजपेयी के लेख पर विवेचन करते हुए मैंने इस बात की चर्चा छेड़ी थी, परन्तु आज तक उसका प्रतिवाद नहीं हुआ, अतः उक्त अनुमान सत्य ही प्रतीत होता है। फिर भी इस पाठ पर विचार करना असंगत न होगा।

श्री बाजपेयी जी ने विश्वमित्र में लिखा था :—

"शुची पाठ वाली प्रतियाँ ठीक हैं।" आगे चलकर वे लिखते हैं, 'संवत् १७३० वि० के आषाढ़ महीने के कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी रविवार को न थी—इस विषय में दो मत हैं :—एक यह कि शुचि का अर्थ ज्येष्ठ भी है और ज्येष्ठ सवत् १७३० वि० में रविवार को त्रयोदशी पड़ी थी; और दूसरा मत मिश्र बन्धुओं का है। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने जो पंचांग बनाकर उनके पास भेजा था, उसके अनुसार श्रावण और कार्तिक दोनों में त्रयोदशी रवीवार को पड़ी थी। परन्तु यदि श्रावण में कृष्ण पक्ष की १३ रविवार को पड़ी हो तो उसे ही 'शुचि' मास मान सकते हैं। कारण, महाराष्ट्र में उत्तर भारत की तरह पूर्णिमान्त मास नहीं होते। वहाँ अमान्त मास होते हैं और शुक्ल पक्ष के पश्चात् कृष्ण पक्ष आता है, इसलिए हमारे यहाँ जो अगले मास

का कृष्ण पक्ष है, वही महाराष्ट्र में पिछले मास का कृष्ण पक्ष कह-लाता है। इस प्रकार यदि हमारी श्रावण कृष्ण त्रयोदशी को उनकी आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी होती है तो कोई भूल नहीं है।"

श्री बाजपेयी जी ने यहाँ पूर्वापर विचार कर पूर्णतया निर्णय कर डाला कि आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी को रविवार था। यह विचारा ही नहीं कि मिश्रबन्धु महोदय इस पाठ को शुद्ध नहीं मानते। उन्होंने "बुध सुदि तेरसि मान", पाठ लिया है। इसी के अनुसार महा महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने श्रावण और कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को बुधवार (रविवार नहीं) होना बत-लाया था।* रहा श्रावण कृष्ण त्रयोदशी का प्रश्न, सो उस दिन बृहस्पतिवार था, रविवार नहीं। आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी को भी रविवार न था। उस दिन मङ्गल पड़ता है। अतः बाजपेयी जी का कथन युक्ति-युक्त नहीं है।

अब शुचि पर भी विचार कर लीजिये। कुछ सज्जनों ने ज्येष्ठ कृष्ण १३ को रविवार होने से शुचि का अर्थ ज्येष्ट मान लिया है। इसके लिए हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं। महीनों के पर्याय देते हुए सबसे प्रसिद्ध और प्रधान कोषकार अमरसिंह अपने अमर कोष में लिखते हैं :—

वैशाखे माधवो राधो ज्येष्ठे शुक्रः शुचिस्त्वयम्।
आषाढे श्रावणे तुस्याननभः श्रावणि कश्च सः ?

---

*नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित और मिश्र बन्धु द्वारा सम्पादित भूषण ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ २६

इस श्लोक में आषाढ़ के अर्थ में स्पष्ट 'शुचि' शब्द दिया गया है। यदि कोई सज्जन खींच-तान कर इसे ज्येष्ठ के अर्थ में लेना भी चाहें तो अमर कोष के "स्वन्ता थादि न पूर्वभाक्", नियमानुसार शुचि का अर्थ ज्येष्ठ लेने से स्पष्ट निषेध किया गया है और 'शुचि' शब्द का अर्थ केवल आषाढ़ बतलाया है। ज्ञात नहीं फिर क्यों 'शुचि' शब्द का अर्थ ज्येष्ठ कर लिया गया है।

मेरे विचार से यह निर्माण-काल का दोहा किसी ने पीछें से मिलाया है, परन्तु जब उस में अशुद्धियाँ प्रकट हुईं तो वे उसे बदलते गये, परन्तु अन्त में उस में भी सफलता न मिली। अब भी अनेक महानुभाव उसी प्रकार के प्रयत्न में संलग्न हैं। फिर भी कोई कृतकार्य नहीं हुआ।

जब वर्ष में एक ही तिथि २४ बार और एक ही बार ५२ दफ़ा आता है तो बार और तिथि अवश्य कहीं न कहीं जाकर एकत्रित हो ही सकते हैं। अतः दोहे में बार या मास का अभाव किसी विशेष महत्त्व का द्योतक नहीं है; और न प्रमाण ही बन सकता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि निर्माण-काल का दोहा बनावटी है। शिवराज भूषण की रचना वास्तव में संवत् १७६९ वि० में हुई है। शिवाबावनी और शिवराज भूषण के ऐतिहासिक विवरणों से भी यही प्रमाणित होता है।

भूषण के बनपुर से तिकमापुर में आ बसने का समय भी सं० १७५८ वि० और सं० १७६९ वि० के बीच में किसी समय था, जिसका उल्लेख मतिराम के पन्ती विहारीलाल ने अपनी विक्रम सतसई की रस-चन्द्रिका नामक टीका में किया है।

शिवाबावनी में जो ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं, वे संवत् १७६९ वि० तक के हैं और शिवराज भूषण में शिवाजी की मृत्यु तक (स० १७३७) के कथन पाये जाते हैं।

संवत् १७३० वि० में तो भूषण तिकमापुर में रहते ही न थे, अतः यह निर्माण-काल कदापि शुद्ध नहीं कहा जा सकता। साथ ही शिवराज भूषण में कुछ ऐसे संकेत भी पाये जाते हैं, जिनसे भूषण के वर्णन शाहू के समय से अधिक सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। यह बात आगे चल कर प्रमाणित की जायगी।

शिवाबावनी

शिवराज भूषण के निर्माण-काल के सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है। अब हम शिवाबावनी के निर्माण-काल के सम्बन्ध में विचार करेंगे। शिवाबावनी वास्तव में एक ऐतिहासिक ग्रन्थ होने के साथ-साथ वीर रस पूर्ण कविताओं का उत्कृष्ट संग्रह है। इसके भीतर एक विशेष घटना की तथ्य-पूर्ण भावना निहित है, जिसने देश की शासन-प्रणाली में एक महान परिवर्तन कर, सारे भारत में राष्ट्रीयता की लहर बहा दी थी।

बहुत काल से यह बात प्रसिद्ध है कि भूषण ने संयोग ही से, शिकार खेलते समय भेंट हो जाने पर, अपने फुटकर छन्दों में से शिवाबावनी के ५२ छन्द शिवाजी (वास्तव में शाहू) को सुनाये थे। जब शाहू जी ने और सुनने की अभिलाषा प्रकट की, तब भूषण ने कहा, "अब महाराजा (शाहू) जी के लिए भी कुछ रख छोड़ें या आपको ही सब सुना दें।" यह सुनकर शाहू जी वहाँ से चले गये और भूषण को शाहू जी के दरबार में जाने के लिए कहते गये।

दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे और जब उन्होंने अपने पूर्व परिचित व्यक्ति को सिंहासन पर बैठा देखा तो वे दंग रह गये। शाहू जी ने उन्हें पास बुलाया और कहा, "मैंने कल निश्चय कर लिया था कि आप मुझे जितने छन्द सुनावेंगे, उसी संख्या के अनुसार आपको पुरस्कार दूँगा।" अतः उन्हें ५२ गाँव (जागीर में), ५२ हाथी, ५२ लक्ष रुपये तथा ५२ शिरोपाव आदि दिये गये।

कुछ लोगों का कथन है कि भूषण ने ५२ छन्द नहीं सुनाये थे; केवल एक ही छन्द "इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सु अम्भ पर.. इत्यादि" ५२ बार सुनाया था। यहाँ पर यही कहना पर्याप्त है कि शाहू ने और छन्द सुनने की अभिलाषा प्रकट की थी और भूषण ने शेष बचा रखने का भाव व्यक्त किया था। अतः इस प्रश्नोत्तर से निश्चित है कि एक ही छन्द बार-बार नहीं सुनाया, वरन् भिन्न-भिन्न छन्द सुनाये गये थे।

अन्य कुछ सज्जनों का कहना है कि भूषण ने एक ही छन्द १८ बार सुनाया था, ५२ बार नहीं। इस विषय में लोकनाथ कवि के "भूषण निवाज्यो जैसे शिवा महाराज जू ने बारन दे बावन धरा में जस छाव है"* में भूषण का ५२ हाथी पाने अर्थात् ५२ कवित्त सुनाने का स्पष्ट वर्णन आया है। वे भूषण के समकालीन कवि थे, इससे उनके कथन की सचाई में कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

इस छन्द में एक संशोधन अवश्य प्रतीत होता है और वह यह कि शाहू के स्थान पर शिवा कर दियाँ गया है। इस छन्द का वास्तव में क्या रूप है, यह तो प्राचीन प्रतियों के प्राप्त होने पर ही प्रकट होगा। यह अवश्य है कि शिवा शब्द पढ़ने से छन्द की लय कान को खटकती है, इसलिए शिवा के स्थान पर शाहू शब्द होना अधिक सम्भव है। यदि शिवा शब्द लिया जायगा, तो हमें उसे 'भगवान् शिवाजी' के ही रूप में लेना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी को जिस प्रकार भगवान् राम ने "निवाज्यौ"; उसी प्रकार शिवाजी ने भूषण पर कृपा की थी, अर्थात् उन्हीं के नाम का आश्रय लेकर उत्कर्ष पाया था। भूषण का शाहू के दरबार में खूब सम्मान हुआ और वे बड़े ठाट-बाट से वहीं रहने लगे।

शिवाबावनी के ५२ छन्दों में से ४ छन्द शाहू जी, बाजी-राव, सुलंकी और अवधूतसिंह की प्रशंसा में कहे गये हैं। ये

* देवी प्रसाद मुंशी कृत राजरत्नमाला, पृ० ४६।

शाहू के समकालीन थे। शेष छन्द शिवाजी की प्रशंसा के हैं, परन्तु उनकी अनेक घटनाएँ शाहू से सम्बन्धित हैं। इसी कारण अनेक विद्वान, घबड़ाकर कहने लगते हैं कि शिवाबावनी की घटना ठीक नहीं है और ये छन्द पीछे से संग्रह कर दिये गये हैं। अब तो लेखकों ने शिवाबावनी के अनेकों छन्द निकाल कर नये छन्द मिलाने प्रारम्भ कर दिये हैं। इस प्रकार शिवाबावनी का ऐतिहासिक महत्व प्रायः नष्ट किया जा रहा है।

भूषण को शिवाजी के आश्रय में मानने वाले विद्वान उनका शिवाजी के दरबार में जाना सं० १७२८ वि० में मानते हैं। परन्तु वे शिवाबावनी में शिवा जी के सम्बन्ध की संवत् १७३६ तक की घटनाएँ और शाहू आदि के सम्बन्ध की संवत् १७६९ वि० तक की घटनाओं का वर्णन देखकर चकित हो जाते हैं और किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर कहने लगते हैं कि भूषण ने एक ही छन्द शिवाजी को अनेक बार सुनाया था। इस प्रकार भूषण की कविता के भी साथ अन्याय किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण वस्तु-स्थिति की अनभिज्ञता ही है। नवीन अनुसन्धान द्वारा भूषण की रचनाओं पर जो प्रकाश पड़ा है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण ने ये ५२ छन्द शिवाजी के सामने नहीं, वरन् शाहू जी के सम्मुख कहे थे। भूषण का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष पीछे हुआ था।

अब शिवाबावनी के ऐतिहासिक विवेचन पर दृष्टिपात कीजिये।

शिवाजी ने सितारा शहर संवत १७३० वि० में जीता था। उसको उन्होंने राजधानी कभी नहीं बनाया। शाहू जी सं० १८३५ वि० में गद्दी पर बैठे थे। तभी उन्होंने सितारा में अपनी राजधानी स्थापित की थी भूषण ने शिवाबावनी के अनेकों छन्दों में इसका राजधानी के तौर पर बड़ा ही विशद वर्णन किया है। उदाहरणार्थ,

दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की, शि० बा०, ३६
तारे लागे फिरन सितारेगढ़ धर के, शि० बा०, ७
बाजत नगारे जे सितारे गढ़ धारी के, शि० बा०, २८

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि यद्यपि भूषण ने इन छन्दों में शिवाजी का ही वर्णन किया है। तथापि ऐतिहासिक आधार शाहू के साथ ही घटित होता है। शिवाजी की राजधानी रायगढ़ थी उसका वर्णन शिवराज भूषण के अनेक छन्दों में किया गया है। फुटकर छन्दों में रायगढ़ का कहीं वर्णन नहीं मिलता; उनमें सितारा का ही विशेष उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रकार शिवराज भूषण में सितारा का वर्णन नहीं है।

सितारा शहर शिवाजी ने २५ अक्टूबर सन् १६७४ ई० को लिया था। उससे पहले वे सितारे में पदार्पण भी न कर सके थे।*

---

*ग्रेट शिवाजी (Great Shivaji), पृ० ३४७

यह समय भूषण के सितारा पहुँचने के कल्पित समय से बहुत पीछे का है। वास्तव में भूषण संवत १७६९ वि० में शाहू के दरबार में सितारा पहुँचे थे।

अब शिवाबावनी के छन्द नं० १५ व ४९ पर दृष्टिपात कीजिये। उनमें वे लिखते हैं—

मालवा उज्जैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोंज लौं परावने परत हैं।

और

भूषन सिरोंज लौं परावने परत फेरि,
दिल्ली पर परत परन्दन की छार है।

इनमें वर्णित मरहठा सेनाएँ शाहू के समय से पूर्व (संवत् १७६९ वि०) मालवा, उज्जैन, भेलसा और दिल्ली में कभी नहीं पहुँचीं। इसी समय सिरोंज में पहली छावनी बालाजी विश्वनाथ पेशवा ने अपने पुत्र बाजीराव के नायकत्व में डाली थी।*

इसी प्रकार

रङ्की भूत दुवन करंकी भूत दिगदंती,
पंकी भूत समुद सुलंकी के पयान ते।

[शि० बा०, २०

---

* डफ कृत मराठा का इतिहास, भाग २

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,

ता दिन दिगंत लौं दुवन दारियतु है। शि० बा०, २१

रूम रूदि डारै खुरासान खूँदि मारै खाक,

खादर लौं भारै ऐसी साहू की बहार है। शि० बा०, ४६

बाजीराव बाज की चपैटैं चंगु चहूँ ओर,

तीतर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं। शि० बा०, ४८

इन छन्दों में सोलंकी अवधूतसिंह, शाहू जी और बाजीराव का स्पष्ट उल्लेख है।

अवधूतसिंह ने सं० १७६८ वि० में रीवाँराज और गहोरा प्रान्त बुँदेलों से वापिस लिया था।* उसके विजय-दरबार में भूषण भी उपस्थित थे। वहाँ से लौटकर ही ये दक्षिण की यात्रा पर रवाना हुए थे।

जिस समय भूषण शाहू से मिले थे, उस समय वे शिकार से लौटकर उसी मन्दिर पर आये थे, जहाँ 'भूषण' ठहरे थे। उस समय का वर्णन भी भूषण ने इस प्रकार किया है।

'भूषन' जू खेलत सितारे में सिकार साहू,

संभा कौ सुअन जातैं दुअन सँचै नहीं। शि० बा०, ४८

---

* नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ४, अंक ४

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण ने शिवाबावनी के छन्द शाहू के सामने कहे थे।

ऊपर के वर्णन के अतिरिक्त शिवाबावनी के अनेक छन्दों में कर्नाटक, मालवा, कुमाऊँ, मौरंग, जिंजी, तजौर, गोलकुंडा, अर्काट, बावनीबवंजा, वेदनूर, मालावार, मदुरा इत्यादि अनेक स्थलों का उल्लेख आया है। इन स्थानों की विजय या तो शिवा जी के अन्तिम समय में हुई है, अथवा शाहू के समय में। अतः इन आधारों पर निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि शिवाबावनी के ५२ छन्द भूषण ने शाहू के सामने कहे थे।

फिर इसका नाम शिवाबावनी क्यों पड़ गया, यह प्रत्यक्ष है, क्योंकि शिवाबावनी में अधिकांश छन्द शिवाजी की प्रशंसा के हैं और उन्हीं का विशद वर्णन उनमें किया गया है। इस दृष्टि से शिवाबावनी के मूलरूप को नष्ट करना राष्ट्रीय भावना को धक्का पहुँचाना है।

हृदयराम का समय-निरूपण

महाकवि भूषण ने अपने शिवराज भूषण नामक ग्रंथ में अपने आश्रयदाता तथा उपाधिदाता हृदयराम का वर्णन किया है। यह वर्णन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि हम हृदयराम का समय निश्चित कर लें तो हमें भूषण का समय निर्धारित करने में अधिक सुगमता होगी। वह वर्णन इस प्रकार है :—

कुल सुलङ्क चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र;
कवि भूषन पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र। शि० भू०, २८

रीवाँ राज्य दर्पण के पृ० ४६८ पर पवैयों की सूची दी हुई है। इसकी तालिका न० ४ में लिखा है :—

"नं० ४ परगना गहोरा (बाँदा) के अधिकारी सुरकी राजा हृदयराम, ग्राम सख्या १०४३३, बीस लाख का इलाका जो अब अँग्रेजी राज्य में शामिल हो गया है ....।"

उपरोक्त दोनों वर्णनों को पढ़कर यह प्रश्न उठता है कि क्या सुरकी और सोलकी एक ही हैं अथवा भिन्न-भिन्न वंश के ?

बैस वंशावली में क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा हुआ है :—

कनउज व्यास कीन्ह जब जज्ञा,
प्रकटे चारि नृपति अति अज्ञा।
चारि भुजा चौहान पँवारा,
सुरकी वीर बली परिहारा।*

यही विषय रीवाँ राज्य दर्पण के पृष्ठ ३९ पर इस प्रकार वर्णित है :—

---

*शंभुकृत बैस-वंशावली

"अग्निवंशी क्षत्रियों की चार शाखाओं में चौहान, पँवार, परिहार और सोलंकी हैं।"

अतः निश्चित है कि सुरकी और सोलंकी कए ही हैं। रीवाँ राज्य के राजकवि पं० अम्बिका प्रसाद जी भट्ट 'अम्बिकेश' ने एक पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था, "ये सुरकी और सोलंकी एक ही हैं। गुजरात में निवास करने के कारण ये अपने को सुरकी कहने लगे हैं। रीवाँ राज्य के ये करीबी भाई-बन्धु माने जाते है।"

इसलए हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि रीवाँ राज्य-दर्पण मे वर्णित हृदयराम सुरकी ही 'मनिराम' कवि को भूषण की उपाधि देने वाले सज्जन थे और ये ही चित्रकूटाधिपति कहलाते थे। इस सम्बन्ध में रीवाँ राज्य के दरबारी कवि, जागीरदार और नरहरि महापात्र के वंशज लालजी कवि ने बतलाया था कि सोलकी चित्रकूट-पति कहे जाते हैं, क्योंकि उनके पूर्वज पहले-पहल चित्रकूट में ही आये थे।

रीवाँ राज्य दर्पण के पृष्ठ ४५ पर लिखा है कि वहाँ की नीची और ऊँची भूमि तरहटी (तरौंहा) और उपरहटी के नाम से प्रसिद्ध है। गहोरा प्रान्त घोड़पाड़ा के नाम से भी विख्यात था। इसी मे तरौंहा का क़िला था। यह प्रान्त चित्रकूट के नाम से भी पुकारा जाता था।

अब्दुलरहीम खानखाना (रहीम कवि) ने भी एक दोहे में रीवाँ नरेश को सम्बोधन कर ऐसा ही संकेत किया है।

४

वह दोहा यह है,

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेश;
जापै विपता परति है, सो आवत यहि देश।

जब रहीम आपत्ति-ग्रस्त दशा में चित्रकूट में निवास कर रहे थे, उस समय कुछ कवियों ने उन्हें आ घेरा था। उनके पास देने को कुछ न था। उस समय रहीम ने उक्त दोहा रीवाँ नरेश के पास भेजा था उसे पढ़ कर बाँधव नरेश ने एक लाख रुपया उनके पास भेज दिया था, जिसे उन्होंने कवियों में बाँट दिया था। इससे भी यही ध्वनि निकलती है कि सोलंकी चित्रकूटपति कहे जाते थे।

फिर सोलंकियों की दूसरी शाखा (सुरकियों) को वह प्रदेश रीवाँ राज्य की ओर से जागीर में मिला था, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

हृदयराम सम्बन्धी अन्वेषण के लिए मैंने रीवाँ राज्य की यात्रा की थी।* वहाँ मुझे रेकर्ड आफिस (Record office) से पवैयों की एक सूची, जो संवत् १८१८ वि० की लिखी हुई थी, प्राप्त हुई थी। उसमें उक्त हृदयराम के नाम गहोरा प्रान्त की जागीर (मुनाफा आदि समेत) दी हुई है। यह सूची महाराजा अवधूतसिंह के पुत्र महाराजा अजीतसिंह ने तैयार

*राज्य के तत्कालीन मन्त्री पं० जानकी प्रसादजी चतुर्वेदी ने मेरे लिए राज्य की ओर से प्रत्येक प्रकार की सुगमता कर दी थी।

करायी थी। इन महाराजा साहब का समय सं० १८१२ वि० से १८६६ वि० तक था। मुझे यहाँ के काग़जातों से और अधिक मसाला न मिल सका, क्योंकि राज्य के पुराने काग़ज़ात सं० १७६० वि० में बुँदेलों ने नष्ट कर डाले थे। सं० १७६८ वि० में रीवाँ राज्य की जब पुनः स्थापना हुई, तभी उक्त जागीर हृदयराम को दी गयी थी और उसी समय से फिर काग़ज़ात एकत्रित किये जाने लगे थे।

मैंने इसके बाद पटेहरा की यात्रा की।* यहाँ पर हृदयराम के वंशज रहते हैं। यहाँ मैं सुरकी वंश के वर्तमान नरेश राजा रामेश्वर प्रतापसिंह और उनके छोटे भाई महाराज कुमार अवधेश प्रतापसिंह से मिला था। ये दोनों भाई बसन्तराय सुरकी से आठवीं पीढ़ी में हैं और राजा रुद्रराव से दसवीं पीढ़ी में। इनके पास सुरकी वंश की वंशावली, महज़रनामा तथा अनेक राज-सम्बन्धी पत्र हैं, जिनको देखकर भूषण के आश्रयदाता हृदयराम और बसन्तराय के समय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

---

* इस यात्रा का प्रबन्ध भी राज्य की ही ओर से था। यह स्थान पहाड़ी प्रदेश में लगभग १०० मील का मार्ग था। मार्ग में टौंस और पनासिन नदियों के जलप्रपात तथा आल्हा घाटा आदि मनोहर पहाड़ी दृश्य मिलते हैं।

इस स्थान पर सुरकियों की वंशावली पर विचार करना असंगत न होगा। इस वंशावली से उद्धृत अंश, महाराज-कुमार लाल अवधेश प्रतापसिंह के हस्ताक्षर सहित मेरे पास प्रस्तुत हैं। इन्हें मैं ज्यों का त्यों उद्धृत किये देता हूँ:—

सिंहराव महाराज के प्रगटे युगल कुमार;
व्याघ्रदेव महाराज भे श्री सुखदेव उदार ।८
श्री सुखदेव नरेश कौ बरणौं उत्तम वंश;
श्री सुखदेव नरेश के रूपदेव जस हंस ।९

× × × ×

भीमसेनी देव के कुमार विजय छत्र देव,
धेनु द्विज बृन्दनि पै कीन्हौं भुजा छाँह है।
विजय छत्रदेव के हैं टोडर सुमल्ल देव,
विप्रन को दीन्हौं दान सहित उछाह है।
टोडर सुमल्ल के हैं महाराज रुद्रराव,
पाल्यौ जो प्रजान कौं सुजान कै निगाह है।
रुद्र रावदेव के हैं सागर सुराव देव,
जिनकी सुबाहु की पनाह गहे साह है। २६

सागर सुराव देव भूप के बसन्तराय,
　　छाय दीन्हौं यश कौ वितान जानै जंग मैं।
लै कैं समसेर जौन सेर सौं निसंक वीर,
　　कीन्हौं जेर बैरिन कौं वीरता उमंग मैं।
चढ़ि कैं तुरंग शैल सोहत मतंग यूथ,
　　संग चतुरंग लै उछाह गहे अंग मैं।
अंकी अवनी कौ करि रंकिय गनीमन कौं,
　　भूपति सुलंकी भौ निसंकी रण रंग मैं। २७

× × × ×

श्री बसन्तराय के कुमार भे पहारसिंह,
　　भक्त हनुमंत के दयालु भे अपार हैं।
श्री पहारसिंह के भये हैं राम सिंह ताके,
　　फतह बहादुर भे जंग जेतवार हैं।
फतेबहादुर के हैं हरिदत्तसिंह जिनकौ,
　　सुजस स्वच्छ मानौ गंग धार हैं।
हरिदत्तसिंह के भये हैं छत्रसालसिंह,
　　दानी भे बिसाल कल्पतरु सो उदारु हैं। २८

इस वंशावली में वर्णित रुद्रराव ही भूषण कवि द्वारा कथित "हृदयराम सुतरुद्र" हैं, जिनका वर्णन 'शिवराज-भूषण' में आया

है। परन्तु इस वंशावली में हृदयराम का नामोल्लेख नहीं है। इसके सम्बन्ध में पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि रुद्रराव के पश्चात् राज-सूत्र सागरराव के बजाय हृदयराम के हाथ में था और वे पटेहरा से भिन्न भागलपुर की शाखा में से थे। ये हृदयराम सागरराव के छोटे भाई थे। सागरराव के पुत्र बसन्त राय ने हृदयराम के बाद पुनः गहोरा प्रान्त अधिकृत कर लिया था, जिसकी प्रशंसा में भूषण ने भी एक छन्द कहा था। इसका एक पदांश यह है।

'बसन्त राय सुरकी की कहूँ न बाग मुरकी।'

गहोरा राज के सुरकियों के वंशज सीतापुर (चित्रकूट) में भी रहते हैं। ठा० गयासिंह सुरकी ने बतलाया था कि पटेहरा, सीतापुर (चित्रकूट), भागलपुर, रेंगाँव और पड़री में सुरकी राजाओं के वंशज रहते हैं।

पटेहरा के राजा साहब के पास एक सनद भी है जिसमें सुरकियों को १४ परगने और पनासिन का क़िला, जो तरौंहा से तीन कोस पर था, रीवाँ राज की ओर से दिये जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उनके पास एक महज़रनामा की नक़ल है जिसे बसन्तराय सुरकी के पौत्र रामसिंह ने सं० १८२० वि० में अँगरेज़ों की सेवा में सहायतार्थ भेजा था। इसमें शुजाउद्दौला

---

* यह पदांश खोह (चित्रकूट) के प्रसिद्ध ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी ने चित्रकूट यात्रा में मुझे बतलाया था।

द्वारा गहोरा राज्य के छीने जाने का उल्लेख है। गहोरा प्रान्त सं० १७८१ वि० में लखनऊ के सूबेदार ने छीन लिया था। बसन्तराय सुरकी की मृत्यु सं० १७८० वि० के लगभग बतलायी जाती है। उस समय बुन्देलखंड पर मोहम्मद खाँ बंगस का आक्रमण हुआ था। सम्भवतः यह राज्य भी उसी झपेट मे आ गया हो और बाजीराव पेशवा की सहायता के कारण फिर बच गया हो।

जिस समय महाराजा छत्रसाल ने बघेलों पर आक्रमण किया था, उस समय महाराजा अवधूतसिंह के साथ हृदयराम सुरकी को भी राज्य छोड़ना पड़ा था। फिर इन दोनों की संयुक्त शक्ति तथा दिल्ली नरेश बहादुरशाह की सहायता से उसने फिर अपना राज्य वापिस पाया था।*

हृदयराम सुरकी और अवधूतसिंह दोनों समकालीन थे और दोनों भूषण के आश्रयदाता थे। इसके सिवाय यह भी अनुमान है कि हृदयराम सुरकी द्वारा ही भूषण अवधूतसिंह के दरबार में उपस्थित हुए थे। अतः यह समय सं० १७६० वि० के लगभग पड़ता है।

एप्रिल सन् १९२७ ई० की मनोरमा में मैंने लिखा था कि रुद्रराव के पुत्र हृदयराम थे, न कि हृदयराम के पुत्र रुद्रराव थे, जैसा जनता मानती चली आ रही है। मेरे इस कथन को अनेक सज्जनों ने स्वीकार कर लिया है तथा लोग शाहू और बाजीराव पेशवा को उनका आश्रयदाता भी मानने लगे हैं। इधर पौष,

---

*नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १२, खंड १-२।

है। परन्तु इस वंशावली में हृदयराम का नामोल्लेख नहीं है। इसके सम्बन्ध में पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि रुद्रराव के पश्चात् राज-सूत्र सागरराव के बजाय हृदयराम के हाथ में था और वे पटेहरा से भिन्न भागलपुर की शाखा में से थे। ये हृदयराम सागरराव के छोटे भाई थे। सागरराव के पुत्र बसन्त राय ने हृदयराम के बाद पुनः गहोरा प्रान्त अधिकृत कर लिया था, जिसकी प्रशंसा में भूपण ने भी एक छन्द कहा था। इसका एक पदांश यह है।

'बसन्त राय सुरकी की कहूँ न बाग मुरकी।'

गहोरा राज के सुरकियों के वंशज सीतापुर (चित्रकूट) में भी रहते हैं। ठा० गयासिंह सुरकी ने बतलाया था कि पटेहरा, सीतापुर (चित्रकूट), भागलपुर, रेंगाँव और पड़री में सुरकी राजाओं के वंशज रहते हैं।

पटेहरा के राजा साहब के पास एक सनद भी है जिसमें सुरकियों को १४ परगने और पनासिन का क़िला, जो तरौंहा से तीन कोस पर था, रीवाँ राज की ओर से दिये जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उनके पास एक महज़रनामा की नक़ल है जिसे बसन्तराय सुरकी के पौत्र रामसिंह ने सं० १८२० वि० में अँगरेज़ों की सेवा में सहायतार्थ भेजा था। इसमें शुजाउद्दौला

* यह पदांश खोई (चित्रकूट) के प्रसिद्ध ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी ने चित्रकूट यात्रा में मुझे बतलाया था।

द्वारा गहोरा राज्य के छीने जाने का उल्लेख है। गहोरा प्रान्त सं० १७८१ वि० में लखनऊ के सूबेदार ने छीन लिया था। बसन्तराय सुरकी की मृत्यु सं० १७८० वि० के लगभग बतलायी जाती है। उस समय बुन्देलखंड पर मोहम्मद खाँ बंगस का आक्रमण हुआ था। सम्भवतः यह राज्य भी उसी झपेट में आ गया हो और बाजीराव पेशवा की सहायता के कारण फिर बच गया हो।

जिस समय महाराजा छत्रसाल ने बघेलों पर आक्रमण किया था, उस समय महाराजा अवधूतसिंह के साथ हृदयराम सुरकी का भी राज्य छोड़ना पड़ा था। फिर इन दोनों की संयुक्त शक्ति तथा दिल्ली नरेश बहादुरशाह की सहायता से उसने फिर अपना राज्य वापिस पाया था।*

हृदयराम सुरकी और अवधूतसिंह दोनों समकालीन थे और दोनों भूषण के आश्रयदाता थे। इसके सिवाय यह भी अनुमान है कि हृदयराम सुरकी द्वारा ही भूषण अवधूतसिंह के दरबार में उपस्थित हुए थे। अतः यह समय सं० १७६० वि० के लगभग पड़ता है।

एप्रिल सन् १९२७ ई० की मनोरमा में मैंने लिखा था कि रुद्रराव के पुत्र हृदयराम थे, न कि हृदयराम के पुत्र रुद्रराव थे, जैसा जनता मानती चली आ रही है। मेरे इस कथन को अनेक सज्जनों ने स्वीकार कर लिया है तथा लोग शाहू और बाजीराव पेशवा को उनका आश्रयदाता भी मानने लगे हैं। इधर पौष,

---

*नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, खंड १-२।

संवत् १९८५ वि० की माधुरी के "भूषण के आश्रयदाता हृदय-राम" शीर्षक पर जो लेख निकला था, उस पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। पत्रिका के सम्पादक लिखते हैं: -

"कहते हैं कि जिस समय महाराज व्याघ्रदेव ने बघेलखंड पर अधिकार किया तो उसे दो भागों में विभक्त कर दिया। जो भू-भाग ऊँचे पर था, वह तो बघेलों के अधिकार में रहा; जो नीचे था वह सुरकियों को दे दिया गया। सुरकी बघेलों की ही एक शाखा है और वे उन्हीं के साथ आकर बघेलखंड में बसे थे।"

इस कथन में कई बातें भ्रान्तिपूर्ण कही गयी हैं। महाराजा व्याघ्रदेव के साथ सुरकी आये, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता, वरन् इसके विरुद्ध कई प्रमाण मिलते हैं। ज्ञात नहीं, कहाँ से आधार लेकर यह कल्पना कर ली गयी है। व्याघ्रदेव ने दक्षिण से चित्रकूट आने पर उसके समीपस्थ मड़फा दुर्ग पर अधिकार कर लिया था, परन्तु उस समय के चित्रकूट के इतिहास में किसी सुरकी का उल्लेख नहीं मिलता। गहोरा प्रान्त पर व्याघ्रदेव का अधिकार होने से विदित होता है कि सुरकी और बघेलों में आधा आधा राज्य बँटने की कल्पना नितान्त निर्मूल है। सुरकियों को बघेलों की शाखा मानना तो और भी अशुद्ध है। सुरकी और बघेले दोनों सोलंकियों की शाखाएँ हैं। बघेलों के गहोरा में आने तक दोनों शाखाएँ सोलंकी नाम से पुकारी जाती थीं। पीछे से सोलंकियों की जो शाखा गुजरात में जा बसी, वह सुरकी कहलाई

---

*रीवाँ राज्य दर्पण, पृ० ४५।

और भाटघोड़ा में जो शाखा जाकर बसी, उसे व्याघ्रदेव के नाम से बघेले कहने लगे।

सम्पादक माधुरी ने सुरकी और बघेलों की वंशावली की तुलना करते हुए बघेलों की ३४ पीढ़ियाँ और सुरकियों की १०-११ पीढ़ियाँ मानी हैं। उन्होंने इन दोनों के फल स्वरूप हृदयराम का समय संवत् १४९१ वि० निर्धारित किया है, परन्तु यह समय अनुकूल न पड़ने से स्वयं उसे त्याज्य समझ लिया है। वे लिखते हैं, 'ऐसी दशा मे वशावली की सूची हमारी बहुत कम सहायता करती है।"

परन्तु सुरकी वंशावली मे सुखदेव से बसन्तराय तक ११ पीढ़ियाँ मानना नितान्त असङ्गत है।

मनोरमा वाले लेख में मैंने नवें दोहे के पश्चात् २६वाँ छन्द उद्धृत किया था। इन छन्दों पर नम्बर भी पड़े थे। बीच के छन्द अनावश्यक समझकर छोड़ दिये गये थे। यथार्थ में सुखदेव से बसन्तराय तक २६ पीढ़ी का अन्तर है।

व्याघ्रदेव सं० १२९० वि० मे किसी समय चित्रकूट में आये थे। अतः सुखदेव का भी यही समय मानना पड़ेगा। सुखदेव से वर्तमान राजा रामेश्वर प्रतापसिंह तक ३५ पीढ़ियाँ होती हैं। सं० १२९० वि० से १९८२ वि० तक ६९२ वर्ष होते हैं। अतः एक पीढ़ी का औसत १९⅘ वर्ष हुआ। इस हिसाब से २५ पीढ़ियों के बाद बसन्तराय का समय सं० १७५५ वि० पड़ता है, जो उनके वंशजों के कथनानुसार तथा लिखित आधार पर भी ठीक बैठता

---

*रीवाँ राज्य दर्पण, पृ० ४६।

है। इससे एक पीढ़ी पूर्व हृदयराम का समय सं० १७५५ वि० के पास मान लेना भी युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

अब सम्पादक महोदय के सब से प्रबल प्रमाण पर भी विचार कर लेना चाहिए।

बाँदा गजटियर के पृष्ठ २९३ के आधार पर पौष, सं० १९८५ की माधुरी के पृष्ठ ११०० पर लिखा है—"यह ख्याति है कि तिचकपुर नामक गाँव जहाँ पर स्थित था, वहीं सन् १६२५ ई० के लगभग गहोरा के सुरकी राजपूत बसन्तराय ने तरौहाँ का दुर्ग बनवाया।" इसका मूल उद्धरण इस प्रकार है।

Another tradition has it that the villago formerly existing was called Tichakpura and that about 1624 A. D., one Basant Rai, Surki Rajput of Gahora camo and built the fort.

इसमें केवल किम्बदन्ती का आधार लिया गया है। फिर बसन्तराय ने बाहर से आकर किला बनवाया, यह बात उसके महत्त्व को और भी कम कर देती है।

इस किम्वदन्ती के पहले उसी गजेटियर में एक और किम्वदन्ती दी हुई है, जिसे माधुरी सम्पादक ने छोड़ दिया है। वह यह है—

One tradition says that in the remote past a city called Dalampur existed here bur no ruins are extant.

इस कथन के बाद बसन्तराय वाली कहावत आने से उसकी महत्ता नाममात्र को रह जाती है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने तो यह कथन नगण्य ही हो जाते हैं।

गज़ेटियर बनाते समय ऐतिहासिक तथ्यो के साथ गलत किम्वदन्तियाँ भी ले ली गयी थीं। उनमे दिये गये संवतो के अनुमान तो और भी अशुद्ध है। नये अन्वेषण ने उन अशुद्धियों को निर्मूल कर दिया है। जिस बात का गजेटियर स्वयम् विश्वास नहीं करता, उसी आधार पर सफलता पाने का भरोसा करना नितान्त असगत है।

अब मिश्रबन्धु महोदय के कथन पर विचार कर लेना चाहिए। आप हिन्दी नवरत्न के पृष्ठ ४०१ पर लिखते हैं, "सोलंकियों का राज्य सं० १७२८ वि० के लगभग महाराजा छत्रसाल ने छीन लिया था, अतएव भूषण को यह उपाधि मिलने की घटना सं० १७२८ वि० से पूर्व की है।" हृदयराम सोलंकी ने भूषण को यह उपाधि दी थी। मिश्रबन्धु महोदय उपाधि देने का समय सं० १७२८ वि० से पूर्व मानते हैं और प्रमाण देते हैं कि स० १७२८ वि० में तो उपाधिदाता का राज्य ही नष्ट हो गया था। जब वे राजा ही न थे, तब उपाधि देना कैसा !!

मिश्रबन्धु महोदय ने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि सं० १७२८ वि० में तो छत्रसाल ने राज्य-सस्थापन प्रारम्भ किया था। उस समय उनको नाम-मात्र का भी राज्य नहीं मिला था।

उस वर्ष वे कुल ३५० जवान एकत्रित कर सके थे। उनके सम्बन्ध में कवि लाल अपने छत्रप्रकाश में लिखता है:—

संवत सतरह सैहि पर, आठ आगरे बीस;
लगत बरस बाईसवीं, उमड़ि पर्यो अवनीस।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सं० १७२८ वि० में छत्रसाल ने राज्य-संस्थापन का कार्य प्रारम्भ किया था इससे पूर्व उन्होंने कहीं पर एक चप्पा भर भी भूमि न ले पायी थी।

फिर नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग १३, अंक १-२ में स्वर्गीय श्री कृष्ण बल्देव जी वर्मा लिखते है कि अवधूतसिंह को हराने और बघेलखण्ड पर कब्जा करने के पश्चात् सं०१७६० वि० के पीछे महाराज छत्रसाल चित्रकूट में ठहरे थे। स्पष्ट है कि संवत् १७६० वि० से पूर्व तरौंहा तथा बघेलखंड पर बघेलों का राज्य था और तरौंहा हृदयराम सुरकी की जागीर में था।

इस प्रकार साहित्य और इतिहास दोनों ही मिश्रबन्धु महोदयों के वर्णन का खंडन करते हैं और मेरे कथन का समर्थन।

हृदयराम का समय जब स० १७५५ वि० के लगभग निश्चित है तब भूषण का भी यही समय होना चाहिए। ऐसी दशा में वर्तमान विचार-धारा बिलकुल उलट जाती है। वास्तव मे भूषण शिवाजी के समकालीन न होकर शाहू के समकालीन थे और उन्हीं के आश्रय में उन्होंने शिवराजभूषण की रचना की थी।

३—ऐतिहासिक विवेचन

शिवराज-भूषण में निर्माणकाल के पीछे की घटनाएँ

कर्नाटक की चढ़ाई

शिवराज भूषण की रचना सं० १७३० वि० मानी जाती है, परन्तु उसमें अनेकों घटनाएँ इस समय के पीछे की वर्तमान है। इस पर कुछ सज्जन यह उत्तर देते हैं कि ये घटनाएँ पीछे से रचकर मिला दी गयीं हैं। उस पर यह प्रश्न उठता है कि इन छन्दों के मिलाने से पूर्व की प्रतियां का रूप क्या कहीं मिलता है? यदि नहीं मिलता तो मानना पड़ेगा कि भूषण ने पीछे से कोई छन्द नहीं मिलाये और सब छन्द पहले के ही रचे हुए हैं। फिर एक ही घटना के अनेकों छन्दों का भिन्न-भिन्न स्थानों पर होना इस बात का प्रमाण है कि ये पीछे से नहीं मिलाये गये।

कर्नाटक की चढ़ाई का वर्णन शिवराज भूषण के तीन छन्दों नं० ११६, २०७ और २६३ में है।

(१) छन्द नं० ११६ में कर्नाटक, हवश और फिरङ्गी आदि वैरियों की स्त्रियाँ अपनी छाती पीटती हैं। हवश और फिरङ्गियों से शिवाजी के युद्ध सं० १७२० वि० के पूर्व भी हो चुके थे, परन्तु कर्नाटक से कोई युद्ध इससे पूर्व नहीं हुआ। कर्नाटक पर शिवाजी की चढ़ाई सं० १७३५ वि० से पूर्व कभी नहीं हुई।

"करनाट हबस फिरङ्गहू बिलायत,
बलख रूम अरि-तिय छतियाँ दलति हैं।"

[शि० भा०, ११६

यह दशा आक्रमण-काल में अथवा आक्रमण की पुनरावृत्ति के समय ही हो सकती है, जिसकी स्मृति स्त्रियों को अधिक भयभीत बना देती है।

'अरि' शब्द भी यही भाव प्रकट करता है कि आक्रमण की भावना उनके हृदय में अवश्य थी।

इस छन्द में गोलकुण्डा का उल्लेख न होने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि वहाँ वालों ने कर्नाटक की चढ़ाई से पूर्व ही शिवाजी से मेल कर लिया था। नहीं तो हज़ारों मील दूर पर "अरि-तिय छतियाँ दलने लगें" और बीच के देशों में शत्रुओं पर कुछ भय न हो, यह सम्भव नहीं।

(२) छन्द नं० २०७ में तो स्पष्ट रूप से कर्नाटक की चढ़ाई का उल्लेख है। वह छन्द यह है :—

लै परनालो शिवा सरजा कर्नाटक लौं सब देस बिगूँचै।
बैरिन के भगे बालक बृन्द कहै कवि भूषन दूरि पहूँचै।
नाघत-नाघत घोर घने बन हारि परे यों कटे मनो कूँचै।
राजकुमार कहाँ सुकमार कहाँ विकरार पहार वे ऊँचै।

सम्पादक माधुरी ने 'लौं' शब्द की व्याख्या करते हुए, पार्थक्य और अभिविधि समझाने के लिए अष्टाध्यायी के अनेक सूत्र लिख डाले हैं, परन्तु फिर भी उन्हें दुविधा ने न छोड़ा। इसका अत्यन्त सरल मार्ग यह है कि हम इसको ऐतिहासिक विवेचन की कसौटी पर कसें। छन्द में लिखा है कि शिवाजी ने परनाला का क़िला जीत कर कर्नाटक तक का सारा देश रौंद डाला। 'ग्रांट डफ' कृत 'मराठों के इतिहास' भाग १६ पृ० २६९ पर लिखा है कि शिवाजी ने १६७६ ई० के अन्त में परनाला का क़िला तीसरी बार जीतकर कर्नाटक पर चढ़ाई की थी। श्रीयुत यदुनाथ सरकार भी पहले परनाले के आस-पास के स्थानों की विजय का वर्णन करके, सन् १६७१ ई० के प्रारम्भ में कर्नाटक की चढ़ाई का उल्लेख करते हैं।

अतः दोनों इतिहासकार इस सम्बन्ध में एकमत हैं। हम 'लौं' का अर्थ मर्यादा के साथ पार्थक्य का ही मान लेते हैं, यद्यपि यहाँ उसका प्रयोग उस अर्थ में नहीं हुआ है, जैसा आगे चलकर प्रमाणित किया गया है। वास्तविक बात तो यह है कि मरहठे सन् १६७७ ई० (१७३४ वि०) से पूर्व कर्नाटक की पश्चिमी बाहरी सीमा पर भी न पहुँच सके थे। सीमा तो दूर की वस्तु है, वे तो वहाँ से सैकड़ों मील दूर, कृष्णा नदी के किनारे तक भी न पहुँच पाये थे।

सन् १६७७ से पूर्व शिवाजी की सेना कभी गोलकुंडा राज्य में भी नहीं घुसी थी, जहाँ से कर्नाटक लगभग ७०० मील दूर

है। इस पर यह विचार पैदा होता है कि सम्पादक महोदय ने 'लौं' की तो इतनी गहरी छानबीन कर डाली, परन्तु ऐतिहासिक घटना-चक्रों पर क्यों ध्यान नहीं दिया।

शिवराज भूषण के २६१ वें छन्द में लिखा है—

"पेसकसैं भेजति बिलायति पुरतगाल,
सुनि कै सहम जाति कर्नाटक-थली हैं।"

इससे यह प्रतीत होता है कि इङ्गलैंड और पुर्तगाल के व्यापारी शिवाजी के पास अपने राजदूत और नज़राने भेजने लगे थे। मदरास, गोवा आदि स्थानों पर मरहठों का अत्यधिक प्रभाव होने से कर्नाटक भयभीत हो गया था। यह दशा सम्वत् १७३१ (सन् १६७४) में शिवाजी की राजगद्दी होने के पश्चात् हुई थी। अतः ये घटनाएँ शिवराज भूषण के निर्माण-काल के पीछे की ही माननी पड़ेंगी। शिवाबावनी की घटनाएँ तो और भी पीछे की मानी जाती हैं। इसका छन्द १७ निम्नलिखित है:—

विज्ञपूर बिदनूर सूर सर धनुष न संधहिं;
मंगल बिनु मल्लारि नारि धम्मल नहिं बंधहिं।
गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिंजाउर;
चाल कुंड दल कुंड गोलकुंडा संका उर।
भूषन प्रताप शिवराज तुव, इमि दक्षिण दिसि संचरहि;
मधुरा धरेश धक धकत सो द्रविड़ निविड़ उर दबि डरहि।

इस छन्द के अधिकांश भाग में कर्नाटक का वर्णन किया गया है। चिंजी-चिंजाउर से जिंजी और जिजवार से आशय है। जिंजी का क़िला एप्रिल, सन् १६७७ में जीता गया था।*
मदुरा भी कर्नाटक प्रान्त में एक प्रसिद्ध स्थान है। विझपूर और बिदनूर की धनुप उठाने योग्य न रहने की दशा तो सन् १६७८ ई० के बाद ही हुई थी, जब शिवाजी कर्नाटक विजय करके लौटे थे।

शिवाबावनी के २२वें छन्द में

'भूषन भनत गिरि विकट निवासी लोग,

बावनी बवंजा नव कोटि धुन्ध जोति हैं' द्वारा बावनी गिरि का जो उल्लेख है, कर्नाटक का ही वर्णन है। श्रीयुत यदुनाथ सरकार ने 'शिवाजी' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ३८८ पर लिखा है—

The Khan (शेर खाँ) fled with a broken regiment of only 100 cavalry to the town of Bawani Giri, 22 miles south of Velur, still persuaded by the enemy.

मिश्रबन्धु महोदय इस बावनी बवंजा को बजूना (फतहपुर सीकरी के समीप का एक स्थान) मानते हैं। परन्तु वास्तव में 'बावनी गिरि' से भूषण का मतलब कर्नाटक नगर से ही है। यहीं पर शिवाजी ने शेरखाँ को हराया था।

---

*यदुनाथ सरकार कृत शिवाजी, पृ० ३०९

कुछ सज्जनों ने "नव कोटि" का अर्थ मारवाड़ से लिया है, परन्तु भूषण ने इस "नवकोटि" से मदुरा के राजा की नौ करोड़ की सम्पत्ति की ओर इशारा किया है, जिसे शिवाजी ने छीन लिया था।*

फिर शिवाबावनी के ७वें छन्द में भूषण कहते हैं,

'भूषन' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल कौं सरके।

कहीं-कहीं 'करनाटी' के स्थान पर 'अरकाटी' पाठ भी मिलता है, जो कर्नाटक की चढ़ाई के पीछे की घटना है। यह तय है कि कोई शत्रु भय से इतनी दूर की साधारण घटनाएँ सुनकर नहीं भागेगा। वह तो अपने ऊपर आक्रमण होने अथवा होने की सम्भावना पर ही भागेगा।

प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार अपने शिवाजी नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ३९३ पर लिखते हैं :—

Shortly before he had pillaged Porto Novo and made himself master of the south Arcot district in October 1677, army surrondered to him and so also did some other forts in the north Arcot district.

अतः यह निश्चित है—वह स्थान चाहे करनाटक हो या

---

* शिवाजी नामक पुस्तक से कर्नाटक की चढ़ाई का वर्णन

अर्काट—कि दोनों स्थानों की घटनाएँ सं० १७३० वि० से कई वर्ष पीछे की हैं।

इन स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए यह कभी सम्भव नहीं कि शिवराज-भूषण का निर्माण-काल सं० १७३० वि० माना जाय।

भड़ौच पर आक्रमण

शिवराज-भूषण के छन्द नं० ३५४ में भूषण ने सूरत की लूट के पश्चात् शिवाजी के भड़ौच पर आक्रमण करने का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

दिल्लिय दलन दबाय कर शिव सरजा निरसंक ;
लूटिलियो सूरत सहर बंकक्करि अति डंक।
बंकक्करि अति डंकक्करि अस संकक्कुलि खल ;
सोचच्चकित भड़ौचच्चलिय विमोच्चचख जल।
तट्टह मन कट्टिक सोइरट्ट हिल्लिय,
सद्दिसि दिसि भद्दबि भइ रद्दिल्लिय।

कुछ लोग इस वर्णन को एकमात्र सूरत की लूट के सम्बन्ध में ही मानते हैं। वे कहते हैं कि सूरत की लूट को देखकर भड़ौच चलायमान हो गया था और यह शिवाजी की सेना के भड़ौच पर किये गये आक्रमण का उल्लेख नहीं है।

यह कथन वास्तविकता से भिन्न है। इसकी केवल दूसरी पंक्ति में सूरत के लूटने का वर्णन है। तीसरी पंक्ति में उसके

प्रभाव का वर्णन किया गया है और शत्रुओं का भय प्रदर्शित किया गया है।

सूरत की लूट के प्रभाव को सोचकर भड़ौचवासी शत्रु, आश्चर्यचकित होकर घबड़ा गये और आँसू बहाने लगे। अन्त में, शिवाजी ने, सूरत के समान ही, भड़ौच नगर के दरवाजे पर पहुँच कर "ढेर के ढेर" शत्रुओं को ठेलकर भगा दिया। इस कारण सब ओर से दबकर दिल्ली की भद्द हुई और वह बरबाद हो गयी। भड़ौच के सम्बन्ध में इतना स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी यदि कोई विद्वान् इससे असहमत हो तो आश्चर्य ही है!

भड़ौच की लूट सं० १७३२ वि० में हुई थी।* डफ महाशय का कथन है कि सं० १७३२ वि० से पूर्व, कभी भी मराठा सेना नर्मदा नदी के उत्तर की ओर नहीं गयी और जब तक सेना का आगमन नर्मदा नदी के दक्षिण किनारे तक न होता, तब तक शत्रु पराजित होकर भागने का नाम तक न लेते। यहाँ तो प्रत्यक्ष ही भड़ौच के दरवाजे पहुँचने अथवा उसकी सीमा में घुसने का उल्लेख है।

यह घटना 'शिवराज-भूषण' के कल्पित निर्माण-काल से दो वर्ष पीछे की है। यह निश्चित् है कि शिवराज-भूषण के निर्माण-काल से पीछे की अनेक घटनाएँ इस ग्रन्थ में वर्तमान हैं, अतः उस में दिया हुआ निर्माण-काल अशुद्ध है।

---

*डफ कृत मराठा इतिहास, भाग १, पृ० २६७।

रामनगर विजय

हम अभी बतला चुके हैं कि शिवराज-भूषण की अनेक घटनाएँ उसके कल्पित निर्माण-काल से पीछे की हैं। इनमें से एक घटना रामनगर विजय की भी है। भूषण ने शिवराज-भूषण में इसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

जावलि बार सिंगार पुरी औ,
जवारि को राम के नेरि को गाजी।
भूषण भौंसिला भूपति तैं सब,
दूरि किए करि कीरति ताजी। शि० भू०, २०७

❀ ❀ ❀ ❀

भूषण भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परबाह बहे रुधिर नदीन के। शि० भू० १७३

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शिवाजी की विजयों का ही इन छन्दों में उल्लेख है। उन्होंने रामनगर को जीतकर अपने यश को नवीन रूप से दिग-दिगन्त-व्यापी कर दिया है। भूषण ने रामनगर की विजय को बहुत महत्त्वपूर्ण बतलाया है तथा इसके कारण शिवाजी को 'गाजी' की उपाधि भी दे डाली है। शिवाजी ने रामनगर को मई, सन् १६७६ ई० में जीता था।*

---

*ग्रेट शिवाजी (Great Shivaji), पृ० ३५०

शिवाजी ग्रन्थ के पृष्ठ २९२ के फुटनोट में लिखा है—

"Ram Nagar was not conquered even upto 1678."

शिवाजी के आक्रमण रामनगर पर जून सन् १६७२ ई० से ही प्रारम्भ हो गये थे, परन्तु उसकी विजय सन् १७७६ ई० में ही हुई थी, जो शिवराज-भूषण के निर्माण-काल से (सम्वत् १७३० वि०) कई वर्ष पीछे की घटना है। ऐसी दशा में शिवराज-भूषण का निर्माण-काल सम्वत् १७३० वि० मानना नितान्त अशुद्ध है।

बहादुर खाँ

भूषण ने बहादुर खाँ की चर्चा अपने अनेक छन्दों में की है और उसे भिन्न-भिन्न नामों से याद किया है। उसके लिए कहीं बहादुर खाँ, कहीं 'बादर खाँ', कहीं 'खान' और कहीं 'जहाँन' नाम का उल्लेख मिलता है। जैसे,

(१) पीय पहारन पास न जाहु यों,

तीय बहादुर सौं कहैं सोपैं ;

कौन बचैहै नवाब तुम्हें, भनि

'भूषन' भौंसिला भूप के रोषैं ? शि० भू०, ७७

(२) या पूना में मत टिको, खान बहादुर आय ;

हयाई साइत खाँन कौं, दीन्हीं सिवा सजाय।

[शि० भू०, ३४०

(३) निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत बीर,
जोधन कौं रन देत जैसे भाऊ खान कौं ।
दिल दरियाव क्यों न कहैं कविराय तोहिं,
तो मैं हरात आनि पानिप जहान कौं ।
[शि० भू०, ३४८

(४) गत बल खान दलेल हुव, खान बहादुर युद्ध ।
[शि० भू०, ३२७

(५) दीन्हीं मुहीम को भार बहादुर,
छागौ सहै क्यों गयन्द कौ झप्पर ?

....

कालिह के जोगी कलींदे कौ खप्पर ।
[फुटकर छंद, ४२

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि बहादुर खाँ के विषय में भूषण की एक निश्चित राय थी । भूषण ने उसे शिवाजी के मुक़ाबले में सर्वत्र अत्यन्त तुच्छ ठहराया है । ऊपर के छन्दों में भूषण ने उसकी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का अच्छा दिग्दर्शन कराया है । तीसरे उदाहरण मे बहादुरख़ाँ के लिए 'खान' और 'जहान' नामों का उल्लेख किया है। 'जहान' बहादुर ख़ाँ की उपाधि थी ।

साहित्य सेवक कार्यालय काशी से प्रकाशित तथा पंच

बर्गीय विद्वान् सम्पादकों द्वारा सम्पादित भूषण ग्रन्थावली के पृ० ३२० पर 'खान' की व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"खान—मुसलमानों की एक उपाधि । खाँ जहाँबहादुर (दे० बहादुर खाँ) ।"

इसी ग्रन्थ के पृ० ३२६ पर जहाँ बहादुर की व्याख्या करते हुए उन्हीं विद्वानों ने लिखा है—

"जहाँ बहादुर—खाँ जहाँ बहादुर (दे० बहादुर खाँ) ।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'खान' और 'जहाँन' शब्द बहादुर खाँ के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

बहादुर खाँ जनवरी सन् १६७३ से १६७७ ई० तक पहली बार दक्षिण का गवर्नर रहा था ।*

दूसरी बार सन् १६८० ई० में बहादुर खाँ फिर दक्षिण का सूबेदार होकर आया था । उसे इसी समय बादशाह औरंगजेब की ओर से 'खाने जहाँ' की उपाधि दी गयी थी ।†

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण की रचनाओं का निर्माण-काल शिवराज-भूषण के कल्पित निर्माण-काल (संवत् १७३० वि०) से बहुत पीछे का है । जब बहादुर खाँ को 'खाने जहाँ' की उपाधि ही सं० १७३७ वि० में मिली थी, तब शिवराज-भूषण का निर्माण-काल १७३० वि० मानना नितान्त अशुद्ध है ।

---

*औरंगज़ेब, जिल्द ४, पृ० १४६

† औरंगज़ेब यदुनाथ सरकार कृत, जिल्द ४, पृ० २४३

दिलेर खाँ

भूषण ने शिवराज भूषण में शिवाजी द्वारा दिलेरखाँ के हराये जाने का उल्लेख किया है। ३५७वें छन्द में वे लिखते हैं :—

गत बल खान दलेल हुव, खान बहादुर युद्ध।

इसी प्रकार अन्यत्र भी कई स्थानों पर इसकी चर्चा की गयी है। दिलेरखाँ को शिवाजी ने जून सन् १६७४ ई० में हराया था। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार अपनी शिवाजी की जीवनी के पृष्ठ २९२ पर लिखते हैं:—

'Defeat of Deler Khan, 1674. But Shivaji stopped the Pathans by breaking the roads and the mountain passes, and keeping a regular guard at various points, where the route was most difficult and the Mughals had returned baffled."

फिर अँगरेजी व्यापारियों के लेख का उद्धरण देते हुए प्रोफ़ेसर सरकार आगे लिखते हैं :—

"Deler Khan hath laterly received a rout by Shivaji and lost 1000 of his Pathans."

इस युद्ध से पूर्व दिलेरखाँ और शिवाजी का कोई युद्ध नहीं हुआ। मुख्यतः दोनों के आमने सामने के युद्ध का यदुनाथ

सरकार ने कहीं उल्लेख नहीं किया। सम्भवतः अन्य इतिहासकार भी इस विषय में सरकार महोदय से पूर्णतया सहमत हैं।

इस घटना से दिलेरखाँ की धाक उखड़ गयी थी। उसकी शान में क्षीणता आ गयी थी। इसीका उल्लेख 'भूषण' ने "गत बल खान दलेल हुव" कह कर किया है।

रायगढ़ और सितारा

भूषण ने शिवराज-भूषण के १४वें छन्द में रायगढ़ का वर्णन इस प्रकार किया है :—

दक्षिण के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास ;
सिव सेवक सिवगढ़ पति, कियो रायगढ़ बास।

इसके पश्चात् ही दस छन्दों में रायगढ़ के क़िले का बड़ा ही विशद वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त कहीं पर भी रायगढ़ का उल्लेख नहीं मिलता। इस क़िले में शिवाजी के राज्याभिषेक का जो महोत्सव हुआ था, उसकी चर्चा तक नहीं की गयी है। इसका एक मुख्य कारण है। भूषण ने शिवाजी को ईश्वर रूप में प्रतिपादित किया है। अतः वे उन्हें राज्य के लिए उद्योगी व्यक्ति के रूप में रखना उचित नहीं समझते थे। राम और कृष्ण की त्याग-भावना का जो रूप शिवाजी में प्रदर्शित किया गया है, वह इस राज्यारोहण के वर्णन से नष्ट हो जाता। अतः भूषण का रायगढ़ का वर्णन शिवाजी की राजनीतिक प्रगति का परिचायक है।

क़िले के वर्णन में जिन वृक्षों आदि का उल्लेख 'भूषण' ने किया है, वे शिवाजी के समय रायगढ़ में न थे, क्योंकि 'भूषण' ने शिवाजी के सामने, स्वयम् वस्तु-स्थिति को देख कर इसका वर्णन कदापि नहीं किया था, वरन् बहुत पीछे शाहू के सामने किया था। इसी से ये कथन तत्कालीन वास्तविक स्थिति से सर्वथा भिन्न हैं। इसका प्रधान कारण कवि-प्रणाली नहीं, अपितु कल्पना है।

'भूषण' ने रायगढ़ की अपेक्षा 'सितारा' राजधानी का महत्व अधिक प्रदर्शित किया है और अनेकों छन्दों में उसका वर्णन भी आया है। शिवाबावनी के छन्द नम्बर ७ में

> "मारे सुन सुभट पनारे वारे उद्भट,
> तारे लागे फिरन सितारा गढ़ धरके"

कह कर सितारा नगर का बहुत ही ओजपूर्ण वर्णन किया गया है।

शिवाजी ने सितारा * १६७४ ई० में जुलाई के बाद लिया था, जो शिवराज भूषण के कल्पित-निर्माण-काल से कई मास पीछे पड़ता है। इस समय "सितारे" का कोई महत्त्व नहीं था। शिवाजी तो सितारे में कभी रहे ही नहीं। वास्तव मे सितारे की प्रसिद्धि शाहू के द्वारा राजधानी बनाये जाने पर सं० १७६५ से हुई। † भूषण ने शिवाबावनी के छन्द नम्बर २८ में

---

* ग्रेट शिवाजी (Great Shivaji), पृ० ३४७

† मराठा पीपिल, जिल्द २, पृ० १, २५

"बाजत नगाड़े जे सितारा गढ़धारी के"

तथा छन्द नम्बर ३६ में

"दिल्ली दुलहिन भई सहर सतारे की"

कह कर शाहू का ही उत्कर्ष दिखलाया है और दिल्ली और सितारे की तुलनात्मक आलोचना तक कर डाली है। उन्होंने अन्तिम छन्द में सितारे को पति और दिल्ली को पत्नी रूप में व्यक्त करके शाहू की राजधानी को ही महत्त्व दिया है। इस में बड़ी ही सुन्दर तथा विनोदपूर्ण उक्ति द्वारा दिल्ली की दिल्लगी उड़ायी है।

मरहठों की सत्ता को शिवाजी की महत्ता और उन्हीं के प्रताप का फल समझ कर ही भूषण ने इस प्रकार के वर्णन किये हैं। जो बातें शिवाजी के नाम पर व्यक्त की गयी हैं, वे वास्तव में शाहू के साथ यथातथ्य रूप में प्रतिफलित होती हैं। कवि ने शिवाजी को महाराष्ट्र की सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया है। भूषण का ध्येय था शिवाजी का आदर्श सामने रख कर सारे देश को संगठित करना। इसके लिए उन्होंने अनेकों प्रकार के प्रयत्न भी किये थे।

शिवराज-भूषण में रायगढ़ का और फुटकर छन्दों में सितारा का उल्लेख मिलने से हम दोनों के अन्तर को सरलता से समझ सकते हैं। ये शिवाजी को वास्तविक रूप में हमारे सामने खड़ा कर देते हैं।

शिवाजी ने सितारा २५ अक्टूबर सन् १६७१ को लिया था,* अतः ये सब वर्णन अवश्य ही सं० १७३० के बाद के ही मानने पड़ेंगे।

भूषण के सम्मुख घटित घटनाओं का अभाव

शिवाजी के दरबार में भूषण के जाने का जो समय माना जाता है, उस समय अनेकों बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं थीं, परन्तु भूषण ने उनकी चर्चा न तो शिवराज-भूषण में की और न फुटकर छन्दों में ही उनका उल्लेख मिलता है। सं० १७२७ से सं० १७२९ तक की प्रमुख घटनाओं का विवरण इस प्रकार है† :—

(१) शिवाजी-छत्रसाल की भेंट, सन् १६७१ ई० (संवत् १७२८ वि०)।

(२) भूपतिसिंह पँवार का पुरन्दर के क़िले में मारा जाना, सन् १६७० ई० (सं० १७२८ वि०)।

(३) रजीउद्दीनखाँ को क़िले में कैद कर देना, सन् १६७० ई० (सं० १७२७ वि०)

(४) महाबतख़ाँ की हार, सन् १६७१ ई० (सं० १७२८)।

(५) विक्रमशाह से राज छीनना, सन् १६७२ ई० (सं० १७२९ वि०)

---

* ग्रेट शिवाजी (Great Shivaji) पृ० ३४७

† शिवाजी, पृ० १०७, १२८, १८८, २०७ और ४३२ और २११

मिश्रबन्धु महोदय शिवाजी के दरबार में भूषण के जाने का समय पहले सं० १७२८ वि० मानते थे। परन्तु उन्होंने हिन्दी-नवरत्न के नये संस्करण में यह समय सम्वत् १७२४ वि० कर दिया है। इस संशोधन का आधार क्या है, यह एक रहस्य है। शिवाजी के दरबार में भूषण के जाने की तिथि सम्वत् १७२४ मान लेने पर तो ऐसी घटनाओं की और भी अधिक संख्या हो जायगी जो भूषण के सामने हुई थी, परन्तु जिनका उल्लेख उन्होंने नहीं किया।

इसके अतिरिक्त भूषण ने शिवराज-भूषण में कई घटनाएँ अशुद्ध दी है, जिनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता नहीं है। वे घटनाएँ निम्नलिखित है—

(१) शिवाजी का मिर्जा जयसिंह को २३ किले देना ऐतिहासिक बात है, परन्तु भूषण इनकी संख्या ३५ लिखते हैं।

(२) गुसलखाने का वर्णन भी इतिहास के अनुकूल नहीं है।

इन सम्पूर्ण बातों पर विचार करने से यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि भूषण ने शिवाजी के दरबार में रहकर 'शिवराज-भूषण' का प्रणयन कदापि नहीं किया था।

दक्षिण मे जो महाराष्ट्र साहित्य उपलब्ध है, उससे भी इसी विचार की पुष्टि होती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण शिवाजी के दरबार में न रह कर शाहू के दरबार में ही थे।

---

* हिन्दी नवरत्न, पृ० ४०२

शब्द साक्ष्य

शब्द शास्त्र का प्रमाण भी एक प्रबल प्रमाण माना जाता है। शब्दों का विकास और ह्रास सामाजिक जीवन में एक प्रधान स्थान रखता है। भूषण ने शिवाजी के लिए कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो शब्द-शास्त्र की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने शिवराज-भूषण के छन्द नं० २११ मे

"सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है"

पद दिया है। इतिहासज्ञ भली भाँति जानते हैं कि 'सवाई' की उपाधि औरंगजेब ने सर्व प्रथम जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह को सम्वत् १७५७ वि० में दी थी।❀

• भूषण औरंगजेब से बहुत घृणा करते थे, इसलिए उसकी दी हुई उपाधि का उन्होंने जयसिंह के लिए कभी प्रयोग नहीं किया। इसके विपरीत वे 'सवाई' की उपाधि शिवाजी के लिए प्रयुक्त करते थे।

यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि इस 'सवाई' शब्द का महत्त्व जयसिंह की उपाधि-प्राप्ति से पूर्व कुछ भी न था, परन्तु महाराज जयसिंह के 'सवाई जयसिंह' कहलाने के कारण ही इस उपाधि को बड़प्पन मिला था।

'सवाई' शब्द को भूषण से पहले किसी कवि ने कभी

❀ टाड का राजस्थान, भाग १

प्रयोग नहीं किया। अतः शिवराज-भूषण में इसका वर्णन आने से स्पष्ट हो जाता है कि उसका निर्माण-काल अवश्य सं० १७५७ वि० से पीछे का है। तभी सवाई शब्द ढल कर उसमें आ सका था।

इसी प्रकार का दूसरा शब्द 'बखत बुलन्द' है। 'भूषण' के पूर्ववर्ती कवियों ने भी इसका प्रयोग किया था। मतिराम द्वितीय ने सं० १७४७ वि० में 'अलंकार पचाशिका' नामक ग्रन्थ रचा था। उसमें उन्होंने राजकुमार ज्ञानचन्द के लिए इस उपाधि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'केशवदास' ने भी 'वीरसिंह देव चरित' में वीरसिंह देव के लिए इसका प्रयोग किया है। परन्तु भूषण ने यह उपाधि केवल शिवाजी के लिए ही प्रयुक्त की है, अन्य किसी के लिए नहीं। उदाहरण के लिए,

"बासव से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखत बुलन्द के।"

[शिव० भू०, १०६

औरंगजेब ने यह उपाधि गोंड़ राजा को सं० १७४० वि० में दी थी।*

इसमें भी भूषण की वही भावना काम करती हुई प्रतीत होती है, जिसका वर्णन 'सवाई' शब्द के विषय में किया गया है।

इसके प्रयोग की एक और विशेषता यह है कि बखत बुलन्द

*नागपुर गज़ेटियर का इतिहास-भाग

शब्द यहाँ विशेषण के तौर पर नहीं रक्खा गया है, वरन् उपनाम की भाँति प्रयुक्त किया गया है। अतः ये दोनों शब्द—'सवाई' और 'बखत बुलन्द'—शब्द-साद्दय के तौर पर भूषण की रचना पर अच्छा प्रकाश डालते हैं और उसके निर्माण-काल के यथार्थ स्वरूप के समझने में सहायक होते हैं।

४—भूषण के आश्रय-दाता

मोरंग तथा कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द

महाकवि भूषण ने शिवराज भूषण के २५०वें छन्द मे अपने आश्रयदाताओं का उल्लेख किया है। उससे विदित होता है कि वे उसके निर्माण-काल तक किन-किन दरबारों में भ्रमण कर चुके थे। वह छन्द यह है :—

मोरंग जाहु कि जाहु कुमाऊँ,
सिरी नगरै कि कवित्त बनाये।
बान्धव जाहु कि जाहु अमेरि, कि
जोधपुरै कि चितौरहि धाये।
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै, कि
दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये।
'भूषन' गाय फिरौ महि में,
बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाये।

इस छन्द को ध्यानपूर्वक पढ़ने तथा ऐतिहासिक तारतम्य पर विचार करने से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि दरबारों में भूषण के जाने का क्रम भी वही है, जो इस छन्द में वर्णित है। औरंगजेब के आक्रमणों ने मोरंग* और कुमाऊँ† के राज्यों को बरबाद कर दिया था। भूषण ने सब से प्रथम इन्हीं स्थानों का भ्रमण किया और उन्हें शिवाजी का आदर्श बतलाकर उनकी नीति पर चलने का उपदेश दिया। इन राज्यों पर इसका प्रभाव पड़ा और आगे चल कर उसी के अनुकरण से उन्हें सफलता भी मिली थी। भूषण ने इन राजाओं की प्रशंसा में कुछ छन्द रचे थे। कुमाऊँ नरेश की प्रशंसा के तो छंद मिले है, परन्तु मोरंग नरेश की प्रशंसा का अब तक कोई छन्द प्राप्त नहीं हुआ। कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द के हाथियों की प्रशंसा का एक यह छन्द है :—

उलदत मद उनमद ज्यों जलधि जल,
बल हद भीमकद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड मंडित मधुप बृन्द,
बिंध्य से बिलन्द सिंधु सातहू के थाह के।
भूषन 'भनत' झूल झम्पति झपानि झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।

---

*चम्पारन गज़ेटियर और औरंगज़ेब भाग ३, पृ० ४१।

†कुमाऊँ नरेश ने दारा के पुत्र सुलैमान शिकोह को आश्रय दिया था, (कुमाऊँ का इतिहास, पृ० २८४) इसलिए औरंगज़ेब ने कुमाऊँ पर कब्ज़ा कर लिया था। (औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ४१-४२।

मेघ से घमंडित मजेजदार तेज पुंज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊँ-नरनाह के।*

कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द और उनके राजकुमार ज्ञानचन्द्र के दरबार में रहकर मतिराम द्वितीय ने संवत् १७४७ वि० में अलंकार पंचाशिका† नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में उन्होने भूषण की भाँति ही, ज्ञानचन्द्र के हाथियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

सहज सिकार खेलै पुहुमि पहार पति,
यार रह्यौ गढ़पति ढारसों लपटि के।
कहै 'मतिराम' नाम सुनत नगारन कौ,
नगन के गढ़पति गढ़ तें निकसि के।
सोहै दलबन्द मैं गयन्द पर ज्ञानचन्द्र,
बखत बिलन्द ऐसी सोभा रही मढ़ि के।
मेरे जान मेघ के ऊपर अँबारी कसि,
मघवा मही को सुख लेन आयो चढ़ि के।

इन दोनों की तुलना करने से स्पष्ट विदित होता है कि 'भूषण' की रचना 'मतिराम' की अपेक्षा अधिक ओजस्विनी और प्रभावशालिनी है तथा उनकी भाषा और शब्द-सगठन भी कहीं अधिक उत्तम है।

---

*भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द, पृ० १२२-२३

†समालोचक, भाग १

कुमाऊँ नरेश* ने भूषण का उचित सम्मान किया था, और चलते समय उन्हें दस सहस्र मुद्रा और एक हाथी दिया था। भेंट देने के पश्चात् बातचीत के दौरान में कुमाऊँ नरेश ने भूषण से कहा था, "आपको ऐसी भेंट अन्यत्र प्राप्त न हुई होगी।" †। इसका उत्तर देते हुए भूषण ने कहा था, "आपको ऐसा, त्यागी ब्राह्मण भी न मिला होगा।" इतना कह कर और उस धन को त्याग कर वे वहाँ से चल दिये। बहुत आग्रह और अनुनय-विनय करने पर भी उन्होंने केवल यही कहा—"शिवाजी का यश-विस्तार देखने और यहाँ पर उनकी नीति का अनुसरण होता है या नहीं, केवल यह जानने के लिए मैं आया था।" इस स्थान पर जिस निस्पृहता का परिचय महाकवि 'भूषण' ने दिया, वह उन्हीं के अनुरूप था। उस समय तक 'भूषण' की आर्थिक स्थिति साधारण ही थी, ऐसी दशा में उनका यह उत्सर्ग अनुपम एवम् प्रशंसनीय था।

श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह

महाकवि भूषण के आश्रयदाता फतहशाह भी थे। कुमायूँ से चलकर भूषण इन्हीं के दरबार में पहुँचे थे। इनकी प्रशंसा

---

* समालोचक, भाग २, पृ० ३४ तथा कुमाऊँ का इतिहास पृ० २०३।

† नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित भूषण ग्रन्थावली की भूमिका।

में फतह प्रकाश में भूषण के दो छन्द पाये जाते हैं, जो निम्न-लिखित हैं :—

लोक ध्रुवलोक हू तें ऊपर रहैगो भारो,
भानु तैं प्रभानि की निधान आनि आनैगो।
सरिता सरिस सुरसरि तैं करैगो साहि,
हरि तैं अधिक अधिपति ताहि नानैगो।
ऊरध परारध लौं गिनती गनैगो गुनि,
वेद तें प्रमान सो प्रमान कछू जानैगो।
सुयश ते भलो मुख भूषण भनैगो बाढ़ि,
गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो।*

इस छन्द से यह ज्ञात होता है कि गढ़वाल नरेश फतहशाह के प्रति जन-साधारण का भाव अच्छा न था, परन्तु भूषण ने अपनी उक्ति और युक्ति से वह भावना दूर कर दी थी। दूसरा छन्द यह है:—

देवता को पति नीको पतिनी शिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ विरथ उर आनियो।
परम धरम को है सेइबो न व्रत नेम,
भोग को संजोग त्रिभुवन जोग जानियो।
'भूषन' कहा भगति न कनक मनि ताते,
विपति कहा वियोग सोग न बखानियो।

---

* फतह प्रकाश, सर्ग, ४ छन्द २१

सम्पति कहा सनेह न गथ गाहिरो,
सुख को निरखिबोई मुकुति न मानियो।*

ऊपर के छन्द में शिवाजी की नीति और उनका प्रभाव बतलाते हुए, इन्द्र और महादेव की प्रशंसा की गयी है और विष्णु तथा तीर्थादि को व्यर्थ बतलाया गया है। विपत्ति और वियोग को अविचारणीय बतलाते हूए सुख को मुक्ति न मानकर 'स्वतन्त्रता' को ही यथार्थ मुक्ति कहा गया है।

इन छन्दों से स्पष्ट है कि फतह शाह के प्रति भूषण के हृदय में कितना सम्मान था। साथ ही "सम्पति कहा सनेह न गथ गाहिरो" कह कर, उन्होंने उद्योतचन्द के अभिमान की निन्दा की ओर संकेत कर दिया है। आगे शिवाजी की नीति के अनुसरण से फतहशाह का राज्य-विस्तार बहुत बढ़ गया था। इसके बाद शिवाजी की नीति का प्रसार करते और राज्यों को संगठित करते हुए 'भूषण' बनपुर को लौट आये।

यह फतहशाह कहाँ के राजा थे, इस विषय में भी गहरा मतभेद है। 'मतिराम-ग्रन्थावली' के सम्पादक महोदय ने इन्हें बुन्देलखंड वासी बुन्देला राजा माना है† और इनका समय सं० १७०० से १७१० दिया है।

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' के पृष्ठ ४८३ पर 'रतन कवि' को श्रीनगर (बुन्देलखण्ड) वासी और श्रीनगर नरेश

*फतह प्रकाश, सर्ग ४, छन्द १६४।

† मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ २२३

फतहशाह बुन्देला के आश्रित, 'फतहप्रकाश' नामक ग्रन्थ का रचयिता माना है। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपने 'शिवराज-शतक' में 'शिवसिंह-सरोज' के आधार पर ही फतहशाह को बुन्देला लिखा है और इन्हीं के आधार पर अन्य साहित्यकारों ने भी उसे बुन्देला मान लिया है।

अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि श्रीनगर नरेश फतहशाह न तो बुन्देला था और न बुन्देलखण्ड का राजा ही था। यह श्रीनगर (गढ़वाल) का राजा था, जिसका समय सं० १७४१ से १७७३ तक था।* वास्तव में 'रतन कवि' कृत फतह-प्रकाश श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह की प्रशंसा में लिखा गया था। 'रतन कवि' इसी नरेश के आश्रित थे। आप द्वारा प्रणीत 'फतहप्रकाश' शिवसिंह सेंगर के पुस्तकालय में मौजूद है। उसमें कहीं भी फतहशाह को बुन्देला नहीं लिखा है। इसके विपरीत इस ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से फतहशाह को श्रीनगर (गढ़वाल) का राजा लिखा हुआ है। ग्रन्थ के प्रथम उद्योत की समाप्ति पर इस प्रकार लिखा है :—

"श्रीनगर वासी राजा फतहशाह' मेदनीशाह आत्मजेन आज्ञप्त।"

इससे विदित होता है कि श्रीनगर नरेश फतहशाह मेदनीशाह का पुत्र था। गढ़वाल गजे़टियर में लिखा है कि मेदनीशाह सन् १६८४ ई० (सं०१७४१) में मर गया और उसका पुत्र

---

* गढ़वाल गज़ेटियर, पृष्ठ ११८

फतहशाह श्रीनगर, गढ़वाल का राजा हुआ जो सं० १७७३ तक राज्य करता रहा।

फतहप्रकाश के दूसरे उद्योत में अद्भुत रस का उदाहरण देते हुए रतन कवि ने एक छन्द लिखा है, जिसका अन्तिम चरण है :—

गढ़वाल नाह फतेशाह शैलगाह तोहि,

जग माँहि जोहि ऐसे ज्ञान गुनियतु है।*

भूषण ने भी एक छन्द में फतहशाह की प्रशंसा करते हुए गढ़वाल राज्य का उल्लेख किया है। इसी छन्द को रतन कवि ने फतहप्रकाश ग्रन्थ में उद्धृत किया है। उसका एक चरण यह है :—

सुजस ते भलो मुख 'भूषण' भनैगो बाढ़ि,

गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो।†

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रतन कवि का आश्रयदाता गढ़वाल नरेश फतहशाह ही था; बुन्देला फतहशाह कदापि नहीं। बुन्देलखंड के किसी 'श्रीनगर में किसी राजा फतहशाह का तो पता ही नहीं चलता। शिवसिंह सेंगर ने भी अन्य किसी रतन कवि का उल्लेख नहीं किया, जो फतहशाह के आश्रित तथा फतहप्रकाश का रचयिता हो। अतः यह निश्चत् है कि शिवसिंह सेंगर से अनजान में यह भूल हुई है और उसी भूल को गोविन्द गिल्ला भाई तथा मिश्रबन्धु महोदयों ने दुहरा

---

*फतह प्रकाश, उद्योत २, छं० ४२

†फतेहप्रकाश, उद्योत ४ छन्द २६

दिया है। सम्भवतः इसी ग्रन्थ में उद्धृत धुरमंगद के छन्द को (जिसमें पंचम का उल्लेख है) फतहशाह के लिए समझ कर ही, शिवसिंह सेंगर ने उन्हें बुन्देला लिख दिया है। वह छन्द यह है—

वीर मद छको पै न कब हूँ उछको जाकौ,
धर में धरका जस पारावार नका है।
जाकौ तेज तका सोई लका सम लका खरे,
खानन खरका जाके धौंसा के धमका हैं।
बाघ ज्यों बबका त्यों ही पंचम रबका जाह,
ठौर ही ठनका गज याते जो दबका है।
सोई खोज बका अब लरने सौं थका,
जब लागा रन पका धुरमंगद कौ धका है।*

फतहप्रकाश में केवल यही छन्द फतहशाह से भिन्न राजा की प्रशंसा में पाया जाता है। धुरमंगद बुन्देला क्षत्रिय था। शिवसिंह सेंगर ने भूल से इस छन्द को फतहशाह की प्रशंसा मे समझ लिया है। पंचम यहाँ कवि का नाम है। यह बुन्देलों की उपाधि भी थी, इसीलिए फतहशाह भ्रम से बुन्देला समझ लिया गया है। वास्तव में वह बुन्देला न था।

---

* फतह प्रकाश, उद्योत १, छन्द ४७।

रीवाँ नरेश अवधूतसिंह का दरबार

महाराजा अवधूतसिंह बान्धव नरेश सं० १७५७ वि०* में गद्दी पर बैठे थे। इसके कुछ दिन पश्चात् भूषण ने रीवाँ दरबार में पदार्पण किया था। रीवाँराज्य के जागीरदार, और चित्रकूटपति हृदयराम से भूषण की पूर्व ही घनिष्ठता हो चुकी थी। उन्हीं के द्वारा रीवाँ की राजगद्दी के अवसर पर भूषण ने अवधूतसिंह के दरबार में प्रवेश किया था। फिर सं० १७६८ वि० में पन्ना नरेश छत्रसाल से युद्ध होने के अवसर पर भूषण के दर्शन होते हैं तथा हृदयराम के साथ अवधूतसिंह के विजयोत्सव में भी वे दिखलायी देते हैं।

हम बतला चुके हैं कि हृदयराम सुरकी की जागीर तरौंहा के नाम से विख्यात थी। यह प्रान्त चित्रकूट के आस पास होने के कारण, ये सुरकी राजा चित्रकूट-पति कहे जाते थे। पन्ना नरेश छत्रसाल ने संवत् १७६० वि। के लगभग रीवाँराज्य तथा चित्रकूट पर अधिकार कर लिया था और संवत् १७६४ वि० के लगभग वे चित्रकूट मे ठहरे थे। अतः निश्चित् है कि उस समय तक रीवाँ तथा चित्रकूट दोनों राज्यों पर उनका अधिकार था।

---

* इम्पीरियल गज़ेटियर, जिल्द २१, पृष्ठ १८२, और रीवाँराज्य दर्पण का वंश-वृक्ष, पृष्ठ १।

†समालोचक, भाग ६, अङ्क १, पृष्ठ ६१।

स० १७६८ वि० में दिल्ली नरेश बहादुर शाह* की सहायता, हृदयराम और अवधूतसिंह की सयुक्त शक्ति, और अवधूतसिंह के मामा प्रतापगढ़ नरेश के सहयोग से अन्त में रीवाँ नरेश ने अपना राज्य वापिस पाया था। इसी के परिणाम स्वरूप हृदयराम को चित्रकूट की २० लाख की जागीर रीवाँ राज्य की ओर से प्रदान की गयी थी। रीवाँ राज्य दर्पण में इस जागीर का स्पष्ट उल्लेख है।†

सम्भव है महाकवि भूषण ने भी अपने उपाधि-दाता के आग्रह से इस युद्ध में यथाशक्ति सहायता प्रदान की हो। भूषण ने हृदयराम सुरकी को इस चढ़ाई के प्रस्थान-समय, वीरों को शक्ति से भर देने वाला, और उनमें नव जीवन-संचार करने वाला मिम्नांकित छन्द सुनाया था :—

बाजि बंब चढ़ौ साजि बाजी जब कलां भूप,
गाजी महाराज राजी भूषण बखान ते।
चंडी की सहाय महि मंडी तेजताई ऐन्ड,
छंडी राय राजा जिन दंडी और निआन ते।
मन्दी भूत रवि रज बन्दी भूत हठ धर,
नन्दी भूत पति औ सुलंकी के पयान तें।

---

* समालोचक, भाग १, अङ्क १, पृष्ठ ६२ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, अङ्क १ और २।

† रीवाँ-राज्य-दर्पण, पृष्ठ ४६८।

रंकी भूत दुवन करङ्की भूत दिगदन्ती,
पंकी भूत समुद सुलंकी के पयान तें।

इससे हम भूषण की प्रभावशालिनी रचना का अनुमान कर सकते हैं।

रीवाँ नरेश के विजयोपलक्ष में जो दरबार हुआ था, उसमें भूषण ने यह छन्द पढ़ा था :—

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूत सिंह,
ता दिन दिगन्त लौं दुवन दाटियतु हैं।
प्रलै कैसे धाराधर धमकैं नगारा धूरि,
धारा तैं समुद्रन की धारा पाटियतु है।
'भूषन' भनत भुवडोल को कहर तहाँ,
हहरत तगा जिमि गज काटियतु है।
काँच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ की पीठिपै पिठी सी बाटियतु है।

कैसा ओजपूर्ण कवित्त है! इसे सुनकर कायरों के हृदय में भी उमंग भर जाती है। भूषण की भाषा और भाव-व्यंजना अत्यन्त ओजस्विनी और उत्साहवर्द्धक तथा उनका शब्द-विन्यास वीर-रस के नितान्त अनुकूल है। उनकी वर्णन-शैली भी अत्यन्त प्रभावशालिनी थी। ऊपर की कविता में वीर रस का जैसा परिपाक हुआ है, वैसा अन्यत्र शायद ही दृष्टिगोचर हो सकेगा।

राजपूताने का भ्रमण

रीवाँ दरबार से लौटने पर भूषण ने राजपूताने की यात्रा की थी। इस यात्रा का उद्देश्य था, इन राज्यों को औरंगज़ेब के विरुद्ध उभाड़ना, तथा उन्हें पारस्परिक सहानुभूति द्वारा संगठित करना। सबसे प्रथम भूषण जयपुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सवाई जयसिंह से भेंट की और उनके चित्त में स्वदेश-प्रेम, जात्युत्थान, मातृभूमि-उद्धार आदि भावों का उद्भावन करने के लिए कुछ दिन वहीं निवास किया। जयपुर नरेश ने इन भावनाओं से प्रेरित होकर राजपूताने का नेतृत्व स्वीकार किया और वे हिन्दूपद बादशाही के लिए सतत उद्योगशील रहे।

भूषण ने सवाई जयसिंह के पूर्वजों तथा उनकी प्रशंसा में जो छन्द रचे हैं, उनमें से एक यहाँ उद्धृत है।

अकबर पायो भगवन्त के तनै सों मान,

बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों।

भूषण त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,

शाहजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों।

अब औरंगज़ेब पायो रामसिंह जू सों,

औरौ दिन पै हैं कूरम के माने सों।

केते राव राजा मान पावैं पातसाहन सों,

पावै बादसाह मान मान के घराने सों।

इस छन्द में भूषण ने सवाई जयसिंह के पूर्वजों* की वीरत्व-पूर्ण घटनाओं और उनके द्वारा मुगल वंश की महान् सेवाओं का बड़ा ही विशद स्पष्टीकरण किया है; साथ ही रावराजा बुधसिंह से जयपुर नरेश† की शत्रुता होने तथा औरंगजेब की दासता स्वीकार करने के कारण उनकी निन्दा भी की गयी है। इससे हम भूषण के राजनीतिक चातुर्य, व्युत्पन्न मति, एवम् कार्य-कुशलता का अनुमान कर सकते हैं। इसी शैली से उन्होंने राजाओं को अपने पक्ष में कर लिया था। सवाई जयसिंह की प्रशंसा में उन्होंने यह छन्द रचा था :—

भले भाई भासमान भासमान भान जाको,
भानत भिखारिन के भूरि भय जाल है।
भोगन को भोगी भोगी राज कैसी भाति भुजा,
भारी भूमि भार के उबारन को ख्याल है।
भाव तो समानि भूमि भामिनी को भरतार,
भूषण भरत खंड भरत भुआल है।
विभौ को भंडार और भलाई को भवन भासै,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है।

भूषण ने इस छन्द में सवाई जयसिंह के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कार्यों, उनके प्रताप तथा ऐश्वर्यपूर्ण समृद्धि का बड़ा ही मार्मिक

---

* अकबर और टाड राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ७०-३९०

† टाड राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ३४३

चित्र अंकित किया है।* वहाँ की वेधशालाओं, नगर-निर्माण तथा रावराजा बूँदी नरेश द्वारा दबा लिये गये जयपुर राज्य के पुनरुद्धार का उल्लेख कर, भूषण ने सवाई जयसिंह की महत्ता को भली भाँति प्रदर्शित किया है। साथ ही भरतखंड के संस्थापक शाकुन्तल भरत से उनकी तुलना कर छन्द की सार्थकता बहुत ही स्पष्ट कर दी है। कैसी प्रतिभासम्पन्न सार्थक रचना है! इन्हीं रचनाओं द्वारा भूषण ने राजाओं में ओज भर कर देश मे राष्ट्रीयता की प्रबल धारा बहा दी थी।

कुछ दिन जयपुर में निवास करने के बाद भूषण जोधपुर चले गये। तत्कालीन जोधपुर नरेश की मनोवृत्ति भूषण के भावों के नितान्त प्रतिकूल थी। वे उस समय मुग़ल राज्य की दरबारदारी कर रहे थे। उनकी मनोवृत्ति बदलते न देख, भूषण वहाँ से उदयपुर चले गये। राणा उदयपुर† ने उन्हें पूर्ण आश्वासन दिया और जयपुर नरेश का साथ देने की प्रतिज्ञा की, जिसका उन्होंने भली भाँति पालन किया।

जोधपुर नरेश के राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित न होने के कारण ही उनके पिता जसवन्तसिंह की शिवराज-भूषण में कड़ी भर्त्सना की गयी है और भूषण उन्हें गीदड़ की पदवी तक देने में नहीं चूके है, यद्यपि वे भूषण के इष्टदेव शिवाजी के घनिष्ट

---

* टाड राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ३४३-५

† टाड राजस्थान, जिल्द २, पृ० ३४४—७

मित्रों में थे और उन्होंने उन्हें यथाशक्ति सहायता भी दी थी। इन सब बातों के होते हुए भी भूषण ने उनकी निन्दा कर सामयिक भावना को ही अधिक स्पष्ट कर दिया है। यथा—

जाहिर है जग में जसवंत लियो गढ़ सिंह में गीदड़ बानो।*

इसके विपरीत राणा जयसिंह के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण ही, राणा-वंश वालों के प्रति भूषण ने सहानुभूति दिखलाते हुए लिखा है:—

हिन्दु बचाय-बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।

[शि० भू०, २७६

इसी प्रकार शिवराज भूषण के छन्द २२६ में भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। यथा—

शिव सरजा सो जंग जुरि, चन्दावत रजवंत;
राव अमर गो अमर पुर, समर रही रजतंत।

इन घटनाओं से हम भूषण की राष्ट्रीय भावनाओं के वास्तविक स्वरूप का अनुमान कर सकते हैं। शिवाजी भी राणा-वंश के थे, इसलिए भूषण के हृदय में राणा वंश की प्रतिष्ठा और भी अधिक थी। भूषण ने राणा उदयपुर की प्रशंसा में कुछ छन्द अवश्य रचे होंगे, क्योंकि उन्होंने राणा के दरबार

---

*भूषण ग्रन्थावली, (साहित्य सेवक कार्यालय, काशी से प्रकाशित) पृ० ११४

में जाने का स्पष्ट उल्लेख किया है, परन्तु वे छन्द अभी तक अप्राप्त हैं।

राजपूताने की यात्रा से भूषण अपनी जन्मभूमि बनपुर को लौट आये और कुछ दिनों तक वहीं रहकर तत्कालीन स्थिति का निरीक्षण करते रहे। परन्तु उन्होंने वहाँ रहना सुरक्षित न समझा, इसलिए वे चिन्तामणि और मतिराम सहित हमीरपुर-नरेश की संरक्षकता में त्रिविक्रमपुर (तिकमापुर) चले गये और तीनों वहीं अपनी-अपनी हवेलियाँ बनवाकर सपरिवार रहने लगे। इन हवेलियों के भग्नावशेष आज भी उक्त महाकवियों की स्मृतियों को ताजा कर देते हैं।

दक्षिण की यात्रा

भूषण १२-१३ वर्ष तक उत्तरी भारत में राष्ट्रीयता और संगठन का कार्य करते हुए, शिवाजी के आदर्श पर समाज को जाग्रत करते रहे। अब उनका ध्यान दक्षिण की ओर आकर्षित हुआ और वे संवत् १७६८ वि० में थोड़े से अनुचरों के साथ बीजापुर पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने आदिलशाही खान्दान के राजकुमारों से भेंट की और उन्हें औरंगजेबी अत्याचारों का स्मरण दिलाकर मुग़लवंश के विरुद्ध उत्तेजित किया।

इसके पश्चात् वे गोलकुंडा पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने उसी नीति का अनुगमन कर कुतुबशाह के वंशजों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया।

बीजापुर और गोलकुंडा दोनों शिया राज्य थे, परन्तु औरंगजेब सुन्नी था। अतः वह इन दोनों शिया राज्यों को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुला हुआ था। अन्त में उन्हें समाप्त करके ही उसने दम ली थी। भूषण ने इन दोनों शिया राज्यों को भी अपने पक्ष में करके दिल्ली साम्राज्य का अन्त करने का प्रबल उद्योग किया था। दक्षिण की यात्रा में उनका प्रधान लक्ष्य केवल यही था।

छत्रपति शाहू से भेंट

बीजापुर और गोलकुंडा होकर भूषण सितारा पहुँचे। सितारा नगरी उस समय मरहठों की राजधानी थी और उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही थी। यहाँ पहुँच कर भूषण ने अपने अनुचरों सहित एक मन्दिर में निवास किया। उस समय शाहू महाराज शिकार खेलने गये हुए थे। शिकार से लौटकर रात के समय संयोगवश शाहू उसी मन्दिर में आ पहुँचे, जिसमें भूषण टिके हुए थे। शाहू और भूषण में बातचीत होने लगी, परन्तु भूषण को यह विदित न हो सका कि ये शाहू महाराज हैं। उत्तरी भारत में बहुत काल तक रहने के कारण शाहू काव्य और साहित्य के बड़े मर्मज्ञ हो गये थे। कवि का परिचय पाकर उन्होंने उनकी कविता सुनने की अभिलाषा प्रकट की। भूषण ने देवी की प्रार्थना के अनन्तर शिवाजी की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया :—

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।

पौन बारिबाह पर शंभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम-दंड पर चीता मृग झुंड पर,
'भूषण' वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंश पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ बंश पर शेर शिवराज है।

[शि० बा०, २

भूषण ने शाहू को इस प्रकार ५२ छन्द सुनाये। इनमें अधिकांश शिवाजी की प्रशंसा में थे; केवल पाँच छन्द शाहू, बाजीराव पेशवा, हृदयराम सुरकी तथा महाराजा अवधूत-सिंह की प्रशंसा में थे। इनमें से एक छन्द जिसमें बाजीराव की भी प्रशंसा का उल्लेख है, शाहू महाराज के शिकार खेलने के सम्बन्ध में भी था। वह यह है :—

सारस से सूबा कर बानक से साहिजादे,
मोर से मुगल मीर धीर मैं धँचै नहीं।
बगुला से बँगस बलूचिए बतक ऐसे,
काबिली कुलंग याते रन मैं रँचै नहीं।
'भूषन' जू खेलत सितारे में शिकार साहू,
संभा को सुअन जाते दुवन सँचै नहीं।
बाजीराव बाज की चपेटैं चंगु चहूँ ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीयर बचै नहीं।

[शि० बा०, ४८

शाहू महाराज महाकवि भूषण की ओजस्विनी वाणी के प्रवाह में ऐसे निमग्न हो गये थे कि कविता सुनने से उनकी तृप्ति ही नहीं होती थी। उन्होंने कुछ और छन्द सुनने की इच्छा प्रकट की, तब भूषण बोल उठे, "अब महाराज शाहू के लिए भी कुछ बचाकर रख छोड़ें कि आपको ही सब सुना दें।" यह सुनकर छत्रपति शाहू वहाँ से चल दिये और भूषण को प्रातः-काल शाहू के दरबार में पधारने के लिए कहते गये।

दूसरे दिन नियत समय पर जब सज-धज के साथ भूषण शाहू महाराज के दरबार में पहुँचे, तो वहाँ गद्दी पर रात वाले व्यक्ति को ही बैठे देखकर वे दंग रह गये। उन्हें चकित देखकर शाहू महाराज ने कहा, "मैंने कल ही निश्चय कर लिया था, कि आप मुझे जितना छन्द सुनावेंगे उसी के अनुसार आपको पुरस्कार दूँगा। अतः आपको ५२ गाँव, ५२ हाथी, ५२ शिरोपाव, और ५२ लक्ष रुपये इत्यादि पुरस्कार में दिये गये हैं।"

भूषण ने इस पुरस्कार से पूर्ण सन्तोष प्रकट किया और वे दरबारी कवि की भाँति वहीं रहने लगे। उन्होंने वहीं रह कर शिवराज-भूषण नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें अलंकारों में उदाहरण स्वरूप छत्रपति शिवाजी की प्रशंसा के ही छन्द दिये गये हैं।

बाजीराव से भेंट

शाहू महाराज के दरबार में रहते हुए, एक बार भूषण ने पेशवा बाजीराव से भी भेंट की थी और उनकी प्रशंसा में कई

छन्द सुनाये थे। ये छन्द शाहू और बाजीराव की प्रशंसा संयुक्त रूप में ही करते हैं। यह बात शिवाबावनी के छन्द नं० ४८,४६ से स्पष्ट हो जाती है। छन्द नम्बर ४९ निम्नलिखित है :—

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारै,
　　काबुल पुकारै कोऊ धरत न सार है।
रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै,
　　खाक खादर लौं झारै ऐसी साहु की बहार है।
सक्खर लौं भक्खर लौं मक्कर लौं चले जात,
　　टक्कर लेवैया कोऊ बार न पार है।
'भूषन' सिरौंज लौं परावने परत फेरि,
　　दिल्ली पर परत परंदन की छार है।

इसी प्रकार शिवाबावनी के छन्द नं० १५ का वर्णन शिवाजी के नाम पर होते हुए भी, वास्तव में शाहू और बाजीराव से ही सम्बन्ध रखता है, क्योंकि ये घटनाएँ उक्त दोनों महानुभाओं के ही समय में ही घटित हुई थीं।

मालवा उज्जैन भनि भूषन भेलास ऐन,
　　सहर सिरौंज लौं परावने परत हैं।
गोंडवानो तिलगानो फिरगानो करनाट,
　　रुहिलानो रुहिलन हिए हहरत हैं।
साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
　　गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं।

बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे बाजें रोज दरवाजे उघरत हैं।

इन छन्दों में वर्णित सिरोंज की छावनी बाजीराव के ही नायकत्व में पड़ी थी। कुछ अन्य घटनाएँ भी शाहू के समय से सम्बन्धित हैं, परन्तु ये घटनाएँ शिवाजी के जीवन से सम्बन्ध रखती हुई बतलायी गयी हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भूषण की दृष्टि में मरहठों का अभ्युदय एवम् उत्कर्ष शिवाजी के प्रताप के कारण हुआ था। ऐतिहासिक तथ्य भी इसी भावना को दृढ़ करता है। यही कारण है कि भूषण ने शाहू के समय की घटनाओं को भी शिवाजी से सम्बन्धित कर दिया है।

दिल्ली नरेश जहाँदारशाह

दिल्ली नरेश जहाँदारशाह की प्रशंसा में भूषण ने निम्न-लिखित छन्द कहा है :—

डंका के दिये तें दल डम्बर उमंड्यौ,
उडमंड्यौ उडमंडल लौं खुर की गरद है।
जहाँ दारशाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड पै मढ़त मारू राग बम्ब नद है।
भूषन भनत घने घुम्मत हरौल बारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद है।

हद्दन छपद्द महिमद्द फरनद्द होत,
कद्दन भनद्द से जलद्द हलदद्द है।*

यह छन्द सम्वत् १७६९ वि० में, जब भूषण दक्षिण से लौटे थे, दिल्ली दरबार में कहा गया था। शिवराज-भूषण के रचना-काल ही में उन्हें बादशाह की ओर से दिल्ली आने का निमन्त्रण मिल चुका था। इसका उल्लेख उन्होंने शिवराज-भूषण के छन्द २५० में "दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये" कह कर किया है।

शिवराज-भूषण के छन्द नं० २५० में बूँदी नरेश का उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक भूषण बूँदी-नरेश (जो जहाँदारशाह के मन्त्री थे) के दरबार में नहीं पहुँचे थे। भूषण सितारा से लौटकर दिल्ली गये थे और तभी वे दिल्ली और बूँदी-नरेश से मिले थे।

दो-एक सज्जनों ने उपर्युक्त छन्द औरंगजेब के बड़े भाई, "दाराशाह" की प्रशंसा में रचा हुआ बतलाया है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि नवीन कृत प्रबोध-रस सुधासर में 'जहाँ-दारशाह' के स्थान में 'जहाँदाराशाह' पाठ मिलता है। उक्त ग्रन्थ मेरा देखा हुआ है। उसमें 'जहाँदाराशाह' पाठ अवश्य है, परन्तु इसमें मुझे लेखक की भूल प्रतीत होती है। लिपिकर्त्ता की भूल मानने के निम्नलिखित कारण हैं:—

---

* भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द, पृ० १२४

(१) दाराशाह दिल्ली का बादशाह कभी नहीं रहा, परन्तु भूषण ने शिवराज-भूषण के छन्द नं० २५० से 'दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये', कहकर जहाँदारशाह द्वारा बुलाये जाने का उल्लेख किया है।

(२) इस छन्द में 'जहाँ' शब्द नाम के अँश-रूप में साभि-प्राय होकर व्यवहृत हुआ है। यदि 'जहाँ' शब्द क्रिया-विशेषण के रूप में होता, तो वह 'तहाँ' शब्द की अपेक्षा रखने वाला होना चाहिए था। यथा

"जहाँ जाय भूखा, तहाँ परै सूखा।"

तथा,

जहँ जहँ जाइँ कुँवर वर दोऊ,
तहँ तहँ चितव चकित सब कोऊ।

इससे स्पष्ट है कि यह 'जहाँ' शब्द नामवाचक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

(३) कुछ महानुभाव इस 'जहाँ' शब्द को भरती का शब्द कहते हैं, परन्तु ऐसा कहते समय वे यह भूल जाते हैं कि भूषण की रचना में भरती के शब्द नहीं रहते। उनकी रचना बड़ी ओजस्विनी तथा सार्थक होती है।

(४) 'जहाँ दारा शाह' में हाँ, दा, रा और शा—ये चार अक्षर दीर्घ रूप में आये हैं। मनहरण दंडक में चार दीर्घ अक्षर एक साथ आने से प्रवाह में बाधा पड़ती है और उच्चारण सुगमता से नहीं होता। इस प्रकार दंडक पद्धति के अनुसार इसमें जहाँ-

दारशाह ही होना चाहिए। चार दीर्घ मात्राओं का प्रयोग कवित्त में दोप भी माना जाता है। अतः यह शब्द जहाँदारशाह ही है।

(५) भूषण के सब आश्रयदाता 'दाराशाह' के बहुत पीछे हुए हैं। उनका एक भी आश्रयदाता दारा का समकालीन न था, जब कि जहाँदारशाह के समकालीन अनेकों आश्रयदाता विद्यमान थे। भूपण का उपाधिदाता भी दाराशाह का समकालीन न था।

अतः यह निश्चित है कि भूषण ने उक्त छन्द दिल्ली नरेश जहाँदारशाह की प्रशंसा में ही रचा था। मुगल इतिहास में उसका समय सम्वत् १७६९ वि०* निर्विवाद है। जहाँदारशाह हिन्दुओं के साथ पूर्ण सहानुभूति रखता था। दिल्ली का राज्य उसको हिन्दुओं की सहायता से ही मिला था और उसका प्रधान मंत्री राव राजाबुधसिंह भी हिन्दू ही था। अतः हस्तलिखित प्रबोध-रस सुधासर (जो भरतपुर पुस्तकालय में सुरक्षित है) में वर्णित 'जहाँ दाराशाह' दिल्ली का बादशाह 'जहाँदारशाह' ही है और उसी की प्रशंसा में भूषण ने उक्त छन्द कहा था।

बूँदी नरेश बुधसिंह

भूषण जिस समय शिवराज-भूषण की रचना कर रहे थे, उसी समय उन्हें दिल्ली पति जहाँदार शाह का निमंत्रण राव-

---

* माधुरी, आषाढ, संवत् १९८१ और इलियट की हिस्ट्री, जिल्द ७, पृ०, ४६२ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ९, अङ्क १

राजा बुधसिंह द्वारा मिला था। भूषण ने उस समय दो छन्द बूँदीनरेश* की प्रशंसा में भी कहे थे। वे ये हैं :—

युद्ध को चढ़त दल बुद्ध को जसत तब,
लंक लौं अतंकन के पतरैं पतारे से।
'भूषण' भनत भारे घूमत गयंद कारे,
बाजत नगारे जात अरि उर छारे से।
धाँसि कैं धरा के गाढ़े कोल के कड़ाके डाढ़े,
आवत तरारे दिगपालन तमारे से।
फेन से फनीस फन फूटि बिष छूटि जात,
उछरि उछरि सिंधु पुरबे फुआरे से।
रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जुनागी उर काहू तैं डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खान खानन के,
श्रोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं।
उगलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै राव बुद्ध कर विमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौ लौं,
जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं।

---

* टाड राजस्थान, भाग १ पृ० ३३०-३३४

बुधसिंह का समय १७६९ वि० से १७६८ वि० तक माना जाता है।

इन छन्दों से स्पष्ट है कि उस समय दिल्ली के मुसलमान सरदारों से राव राजाजी का विरोध हो रहा था, परन्तु बादशाह राव राजाजी के पक्ष में था।

राव राजा जी कवित्त-प्रेमी थे और कवियों का उचित मान करते थे। उनका दरबार कवियों से भरा रहता था। अनेक कवियों ने उनका प्रशंसात्मक वर्णन किया है।

मैंड़ू नरेश राजा अनुरुद्ध सिंह

दिल्ली से लौटते हुए भूषण मैंड़ू (जिला अलीगढ़) के राजा अनिरुद्धसिंह* से मिले थे। यहाँ भी उनका सम्मान खूब हुआ था। उन्होंने अनिरुद्धसिंह की प्रशंसा में निम्नलिखित छन्द सुनाया था।

पौरच नरेश अमरेसजू के अनिरुद्ध,
तेरे जस सुने ते सुहात श्रौन सीतलै।
चन्दन सी चाँदनी सी चादरैं सी चहुँ दिसि,
पथ पर फैलती हैं परम पुनीत लै।
'भूषन'बखानी कवि मुखन प्रमानी सो तौ,
बानीजू के बाहन हरख हँस हौ तलै।
सरद के घन की घटान सी घमँड़ती हैं,
मैंड़ू ते उमँड़ती है मंडती महीतलै।**

---

* अनिरुद्ध सिंह शीर्षक लेख; माधुरी, चैत्र, संवत् १९९०

** भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द ३८, पृ० १२२

पौरच नरेश से भूषण की भेंट का उल्लेख वहाँ के दरबारी कवि जै जै राम ने अपने काव्य 'कृष्ण जन्म खंड' में इस प्रकार किया है :—

भूषनादि कवि आइ कैं, पायो बहु सनमान;
जस बरनन जिनकौ कियौ, बहु कवि जान जहान।

यह ग्रन्थ संवत् १८६७ वि० में रचा गया था और राजा अनिरुद्ध सिंह की मृत्यु स० १७७० वि० के लगभग अनुमान की जाती है।† इससे भूषण के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

(१) छत्रपति शाहू, जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह तथा दिल्ली के बादशाह जहाँदार शाह के यहाँ सम्मान पाने पर भी वे छोटे-छोटे जागीरदारों के यहाँ जाने में संकोच न करते थे।

(२) राष्ट्रीय संगठन के लिए वे छोटे-बड़े सभी दरबारों में बराबर आते जाते रहते थे और सब भूषण को अपने दरबार में बुलाने के लिए उत्सुक रहते थे।

(३) राजा अनिरुद्धसिंह के दरबारी कवि, भूषण के जाने के १०० वर्ष पश्चात् भी, उनकी महत्ता का अनुमान कर बड़े गौरव के साथ उनका उल्लेख अपने काव्य में किया करते थे।

---

† माधुरी, वर्ष ११, खण्ड २, संख्या ३, पृ० ३२८-३३०

असोथर नरेश भगवन्तराय खीची

भूषण संवत् १७७० वि० के लगभग असोथर नरेश भगवन्त राय खीची* के दरबार में पहुँचे थे। शिवाजी की नीति पर चलकर ही खीची ने अपने बाहुबल से एक छोटी सी जागीर से एक बृहत राज्य की स्थापना कर ली थी। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि इन्होंने ४८ युद्धों में विजय प्राप्त की थी। मध्यदेश में उस समय इनकी वीरता की धाक जमी हुई थी। इन्होंने कोड़ा जहानाबाद के मुसलमान सूबेदार को मारकर उसकी लड़की से अपने पुत्र रूपसिंह का विवाह कर दिया था। भूषण के हृदय में खीची के प्रति आदर और प्रेम था और वे उनके दरबार में बहुधा आया-जाया करते थे तथा समय समय पर सलाह-मशविरा दिया करते थे। भूषण की समाज-सुधारक योजना को असली रूप देने में खीची भी सदैव अग्रसर रहता था, अतः भूषण और खीची में स्वाभाविक स्नेह-बन्धन हो गया था। खीची के निधन† पर भूषण ने छन्द कहे हैं, उनसे हम भूषण की हार्दिक भावना का अनुमान कर सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों उनके एक-एक शब्द से मार्मिक वेदना फूटी पड़ती हो।

---

* भगवन्तराय रासा, पृष्ठ १ और ना० प्र० पत्रिका, भाग ९, अङ्क १-

† डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर यू० पी०, ज़िला फ़तहपुर, के पृष्ठ १९७ पर भगवन्तराय खीची की मृत्यु सं० १८०२ वि० (सन् १७४९ ई०) लिखी है, जो अशुद्ध प्रतीत होती है।

यथा,

उठि गयो आलम सो रुजुक सिपाहिन कौ,
उठिगौ बँधैया सबै बीरता के बाने को।
'भूषन' भनत उठि गयो है धरा ते धर्म,
उठिगौ सिंगार सबै राजा राव राने को।
उठिगौ सुकवि सील उठिगौ जसीलौ डील,
फैलो मध्य देश में समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिक्षुक के जूझे भगवन्त राय,
अरराय टूट्यो कुल खम्भ हिन्दुआने को।*

शुंडन समेत काटि विहद मतंगन कौं,
रुधिर सों रङ्ग रण मंडल में भरिगौ।
भूषन भनत तहाँ भूप भगवन्तराय,
पारथ समान महाभारत सौ करिगौ।
मारे देखि मुगल तुराब खान ताही समै,
काहू अस न जानी मानौ नट सौ उचरिगौ।
बाजीगर कैसी दगाबाजी करि बाजी चढ़ि,
हाथी हाथा हाथी तैं सहादति उतरिगौ।†

---

* यह छन्द मुझे राजा साहब भिनगा के पुस्तकालय से प्राप्त हुआ था।

† यह छन्द मुझे नरहरि महापात्र के वंशज श्री लाल कवि के संग्रह से मिला था।

इन छन्दों से हम खीची के प्रति भूषण की भावना का अनुमान कर सकते हैं। इनमें उनकी राष्ट्रीयता का स्वरूप भी प्रत्यक्ष हो जाता है। सम्भव है भूषण ने भगवन्तराय खीची की प्रशंसा में कुछ छन्द और भी कहे हों, परन्तु वे अभी तक अप्राप्त हैं।

. समालोचक सम्पादक पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने कल्पना के आधार पर पहले छन्द को भूधर कृत बतलाया है। उनका अनुमान है कि किसी लेखक ने लिपि-दोष के कारण इसे 'भूधर' के स्थान पर 'भूषण' पढ़ लिया होगा। उनके विचार मे इसकी भाषा भूधर से मिलती हुई है। उन्होंने दूसरे छन्द को भी भूधर रचित ही माना था और मिलान के लिए एक छन्द भी उद्धृत किया था।† किन्तु बाद मे दूसरे छन्द के सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत बदल दिया और समालोचक के दूसरे अक में इस छन्द को 'सारंग' कवि कृत बतलाया। आपका कथन है कि 'सारंग' भगवन्तराय खीची के आश्रित कवि थे और उक्त छन्द की रचना भगवन्तराय के लिए नहीं, बल्कि उनके भतीजे भवानीसिंह के लिए हुई थी। आगे चलकर वे लिखते हैं, 'आज से ४० वर्ष पूर्व जिस शिवसिंह सरोज की रचना हुई थी, उसके पृष्ठ ४६१ में 'सारंग' कवि के लिए लिखा है, "ये कवि राजा भवानीसिंह खीची, भगवन्तरायजी के भतीजे के पास असोथर में रहा करते थे।" पृष्ठ ३२७-८ में विवादास्पद छंद भी दिया है जो इस प्रकार है :—

† समालोचक, भाग १, अंक १ और २

तंगन समेत काटि विहित मतंगन सौं,
रुधिर सों रंग रण मंडल में भरिगौ।
सारंग सुकवि भनै भूपति भवानी सिंह,
पारथ समान महाभारत सौ करिगौ।
मारे देखि मुगल तुराब खान ताही समय,
काहू अस न जानी काहू नट सौ उचरिगौ।
बाजीगर कैसी दगाबाजी करि बाजी चढ़ि,
हाथी हाथा हाथी तें सहादति उतरिगौ।

इसके अतिरिक्त यह छन्द हरिश्चन्द्र कला के सं० १९४८ में प्रकाशित संस्करण के पृष्ठ ११२ पर भी मिला है। इससे सिद्ध होता है कि यह छंद सारंग कवि का ही है, भूषण का नहीं।'

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि ये दोनों छन्द भूषण कृत हैं अथवा 'भूधर' और 'सारंग' कृत। इसी प्रकार इस बात पर भी विचार करना आवश्यक है कि ये छन्द भगवन्त-राय खींची की प्रशंसा में लिखे गये थे, अथवा उसके भतीजे "भवानीसिंह" की प्रशंसा में।

इन बातों की जाँच छन्द में आये हुए ऐतिहासिक व्यक्तियों की विवेचना से सहज ही में हो सकती है। दूसरे छन्द में दो मुसलमान व्यक्तियों के नाम प्रसंगवश आये हैं। युद्ध में तुराब खाँ के मारे जाने पर सहादत खाँ किस स्फूर्ति से हाथी से

उतर कर घोड़े पर सवार हो गया, इसीका वर्णन अन्तिम चार पंक्तियों में है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ४, अंक १ में एक लेख भगवन्तराय रासा पर निकला है। इस ग्रन्थ की रचना भगवन्तराय खींची के दरबारी कवि 'सदानन्द' ने की थी और उसका निर्माण-काल खीची की मृत्यु के कुछ ही दिन पीछे का है। पत्रिका के पृष्ठ १११ पर लिखा है, "जब मोहम्मदशाह बादशाह ने अवध के नवाब बुर्हानुल्मुल्क (सादत खाँ), को इस परगने का अधिकार दे दिया, तब वह ससैन्य शान्ति-स्थापन के लिए आया। भगवन्तसिंह यह समाचार सुनकर, तीन सहस्र सवारों के साथ गाजीपुर (फतहपुर) के दुर्ग से निकल कर नवाब की सेना के सामने जा डटे। नवाब के आक्रमण से कुछ क्षति उठाकर, उसका रुख बचाते हुए, वे अबू-तुराब ख़ाँ के अधीनस्थ हरावल पर टूट पड़े। उस अफ़सर को मारकर तथा हरावल को छिन्न-भिन्न कर भगवन्तराय नवाब की शरीर-रक्षक सेना पर जा पड़े।"

उसी पत्रिका के पृष्ठ ११४ के फ़ुट-नोट में लिखा है— सादत ख़ाँ -अवध के प्रथम नवाब बुर्हानुल्मुल्क सादत ख़ाँ का नाम सहादति ख़ांन (सादति ख़ाँ आदि) रक्खा गया है।

यह तो हुआ मुसलमानी तवारीख का ऐतिहासिक वर्णन। अब रासे में भी देखिये सदानन्द कवि क्या लिखते हैं :—

साह मोहम्मद छत्रपति, दान कृपान जहान ;
सूबा कीन्हों अवध कौ, बिदित सहादति खान ।

और

चलि फौज सादति खान की गढ़ छोड़ि कैं गरबी भगे ।
भजि जात दिग्गज डोल परबत सार सों अहि यों जगे ।
तब जाइ कैं तहहीं जुरे जहँ खेत बैरिन कौं रुचै ।
उत तैं चल्यो भगवन्त जू रन आजु तो हमसौं सचै ।

चमकै छटा सी ज्यों घटा सौं दल फारि देत,
केतिन कटाकै भर जत्थन सुभाइ कैं ।
भूप भगवन्त की कृपान यों करति खेत,
खंडै खल शीस भुज समर चुनाइ कैं ।
ज्योति सी जगी है अनुराग सौं रँगी है,
बज्र चाल सों पगी है गति अद्भुत पाइ कैं ।
आरत कौं छाँड़ते विचारि तब मानी मूढ़,
मोगल संघारति तुराबखान खाइकैं ।

इन छन्दों से भी सिद्ध होता है कि तुराबखाँ को, जिसे मुसलमानी इतिहासों में अबूतुराब खाँ लिखा गया है, भगवन्तसिंह खीची ने मार डाला था, और फिर सादत खाँ पर धावा बोल दिया था। सादत खाँ अवध का नवाब था और वह सेना लेकर भगवन्तसिंह खीची पर चढ़ आया था।

ऊपर के छन्द में भगवन्तराय खीची* का ही नाम मिलता है, भवानीसिंह का नहीं। वास्तव में सहादत खाँ तथा तुराब खाँ का युद्ध भगवन्तराय खीची के ही साथ हुआ था। भवानीसिंह तो भगवन्तराय खीची के मारे जाने पर सहादत खाँ द्वारा असोथर की गद्दी पर बैठाये गये थे। न तो इस युद्ध से भवानीसिंह से कोई सम्बन्ध था, और न वे दोनों छन्द 'भूधर' तथा सारग कृत ही हैं। इसके विपरीति वे दोनां छन्द भूषण कृत ही हैं।

छत्रपति छत्रसाल की सहायता

संवत् १७८० वि० के लगभग मोहम्मद खाँ बंगश ने पन्ना-नरेश छत्रपति छत्रसाल पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया। महाराजा छत्रसाल उस समय बहुत वृद्ध हो गये थे। उनके पुत्रों में कोई भी सुयोग्य सेनापति न था, अतः वे इस आक्रमण को न सम्हाल सके। उन्होंने उस समय भषण को बुलाया और उनसे परामर्श करके उन्हीं को बाजीराव पेशवा के पास सहायतार्थ भेजा।

भूषण ने छत्रसाल की ओर से पेशवा से यह प्रार्थना की थी :—

> जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति मेरी आज ;
> बाजी जात बुँदेल की राखौ बाजी लाज।

---

* ना० प्र० प०, भाग, ४ अंक १, तथा ना० प्र० प०, भाग ६, अंक ३ और हिस्ट्री ऑव अवध।

अन्त में भूषण ने महाराज शाहू और बाजीराव पेशवा को सहायता देने के लिए राज़ी कर लिया । मरहठों की एक मँजी-मँजायी सेना लेकर पेशवा उत्तरी भारत की ओर रवाना हुआ । इस चढ़ाई के अवसर पर भूषण ने छत्रपति शाहू और बाजीराव पेशवा की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया था :—

साजि दल सहज सितारा महाराज चलैं,
बाजत नगारा पढैं धाराधार साथ से।
राव उमराव राना देस देस पति भागे,
तजि तजि गढ़न गढ़ोई दसमाथ से।
पैग पैग होत भारी डावाँडोल भुवि गोल,
पैग पैग होत दिग्ग मैगल अनाथ से।
उलटत पलटत गिरत झुकत उझकत,
शेष फन बेदपाथिन के हाथ से।

चिमना जी से भेंट

इसी दौरान में भूषण ने बाजीराव पेशवा के छोटे भाई चिमनाजी (चिन्तामणि) से भेंट की थी और उनकी प्रशंसा में निम्नलिखित छन्द सुनाया था:—

सक्र जिमि सैल पर अर्क तम फैल पर,
बिघन की रैल पर लम्बोदर लेखिए।

राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,
भूषन ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिए।
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ चतुरंग पर चिन्तामणि देखिए।
[शि० भू०, १२०

बंगश युद्ध

मरहठी सेना ने उत्तरी भारत में आकर झाँसी में डेरे डाले। फिर व्यूह की रचना कर एक ओर से मरहठों ने और दूसरी ओर से बुँदेलों ने मोहम्मद खाँ बंगश पर हल्ला बोल दिया। बंगश घबड़ा कर मैदान छोड़ कर भाग गया और विजयश्री बाजीराव पेशवा के हाथ लगी।

भूषण ने बंगश-विजय के पश्चात् बाजीराव पेशवा से भेंट की और उनकी प्रशंसा में यह छन्द सुनाया :—

बाजे बाजे राजे से निवाजे हैं नजरि करि,
बाजे बाजे राजे काढ़ि काटे असिमत्ता सों।
बाँके बाँके सूबा नाल बन्दी दै सलाह करैं,
बाँके बाँके सूबा करे एक एक लत्ता सों।
गाढ़े गाढ़े गढ़पति काढ़े राम द्वार दै दै,
गाढ़े गाढ़े गढ़पति आने तरे कत्ता सों।

बाजीराव गाजी ने उबार्‌यो आइ छत्रसाल,
आमिल बिठायो बल करि कै चकत्ता सों।

(शि० भू०, फुटकर छन्द, ४१)

युद्ध-समाप्ति के अनन्तर महाराज छत्रसाल ने भूषण की सलाह से अपनी कन्या मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा से कर दिया और अपना तिहाई राज्य दहेज में समर्पित कर दिया।

इस के पश्चात् पेशवा बाजीराव को पूना के लिए बिदा करके भूषण अपने निवास-स्थान तिकमापुर को लौट गये।

इससे स्पष्ट है कि भूषण जन्म भर राष्ट्रोद्धार करते रहे और देश और समाज में राष्ट्रीय भाव फैलाते रहे। वे इस हेतु समय समय पर सितारा, पूना, पन्ना, जयपुर, असोथर, और रीवाँ आदि दरबारों में आते-जाते रहे।

इस प्रकार राष्ट्र-सेवा करते हुए, संवत् १८०० वि० के लगभग उन्होंने चिर-विश्राम लिया।

महाराजा छत्रसाल से भेंट

महाराजा छत्रसाल ने भूषण के उपाधिदाता और आश्रयदाता चित्रकूटपति हृदयराम सुरकी तथा रीवाँ नरेश अवधूतसिंह का राज्य छीन कर अपने अधिकार में कर लिया था। इससे भूषण उनसे अत्यन्त असन्तुष्ट थे। यही कारण था कि वे बुँदेलखंड-वासी होते हुए भी कभी पन्ना-नरेश से न मिले थे। परन्तु छत्र-साल पर आपत्ति आते ही वे उनकी सहायता के लिए तुरन्त

दौड़ पड़े थे और उन्होंने बाजीराव पेशवा से सहायता दिलवाकर बुंदेलखंड को यवनों से सुरक्षित करवा दिया था। उनकी राष्ट्रीय भावना, उत्कृष्ट राजनीति, एव उदारता का इससे बढ़कर उदाहरण मिलना कठिन है।

भूषण की इस उदारता और राजनीति का छत्रपति छत्रसाल के हृदय पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भूषण को अपने दरबार में बुलाया। भूषण ठाट-बाट से अपने नाती को संग लेकर पन्ना पहुँचे। सूचना मिलने पर महाराजा छत्रसाल स्वयम् पेशबाई के लिए चल दिये। भूषण पालकी पर सवार थे। उनका नाती घोड़े पर सवार था और पालकी के आगे-आगे चल रहा था। अन्य कई कवि, घुड़सवार, नौकर चाकर आदि साथ मे चल रहे थे। पास पहुँचते ही महाराजा छत्रसाल हाथी से उतर पड़े। भूषण के नाती को तो उन्होंने हाथी पर सवार करा दिया और स्वयं पालकी के एक कहार को हटाकर उसके स्थान पर लग गये। ज्योंही यह वृत्तान्त भूषण को ज्ञात हुआ, वे तुरन्त पालकी से कूद पड़े और 'बस! बस' कहते हुए उन्होंने महाराजा छत्रसाल की प्रशंसा में उसी समय यह छन्द सुनाया :—नाती को हाथी दियो, जा पै ढुरकत ढाल ;

साहू के जस कलस पै, धुज बाँधी छत्रसाल।

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ौ,

गाजत गयन्द दिग्गजन हियसाल को।

जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुर्जन करत बहु ख्याल को।
साजि सजि गज तुरी पैदर करतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ?
और,राजा राव एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ?

इस प्रकार उन्होंने क्रमशः दस कवित्त सुनाये। फिर दोनों गले मिले। पन्ना में यह युगल समागम बहुत दिनों तक होता रहा। ये दसों छन्द 'छत्रसाल दशक' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भूषण की महानुभावता ही उनको इतना आदर और अतुलनीय ऐश्वर्य देने में सफल हुई थी। छत्रसाल के यहाँ भूषण को जो सम्मान मिला था, वैसा सम्भवतः संसार के किसी कवि को नसीब नहीं हुआ और वह उनकी उदारता का उचित पुरस्कार था।

आश्रयदाताओं की सूची

यहाँ पर भूषण के आश्रयदाताओं की तालिका उनके राज्य-काल समेत दी जाती है। इससे भूषण का समय समझने में सुगमता होगी।

१—चित्रकूटपति हृदयराम सुरकी, संवत् १७५० वि० के लगभग।*

* सुधा, वर्ष ३, खंड १, संख्या ४, पृ० ४३२

२—कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द, १७३१ से १७५५ वि० तक*
३—श्रीनगर नरेश फतहशाह, सं० १७४१ से १७७३ वि० तक। †
४—रीवाँ नरेश अवधूत सिंह, १७७५—१८१२ वि० तक।‡
५—जयपुर नरेश सवाई जयसिंह, १७५६—१८०० तक।§
६—सितारा नरेश छत्रपति शाहू, १७६५-१८०५ वि० तक।§§
७—बूँदी नरेश रावराजा बुधसिंह, स० १७६४ से १७९८ वि० तक। §‡
८—दिल्ली नरेश जहाँदारशाह, स० १७६९ वि०। ††
९—मैंडू नरेश अनिरुद्ध सिंह पौरच, सं० १७७० वि० के लगभग।**

---

* कुमाऊँ का इतिहास, पृ० २९६

† गढ़वाल गज़ेटियर, पृ० १८८-८९

‡ इम्पीरियल गज़ेटियर, जिल्द २१ पृ० १८२ और रीवाँ राज्य दर्पण का वंश-वृक्ष।

§ टाड राजस्थान, भाग १, पृ० २८८-२९८

§§ पारसनीस का इतिहास, भाग १, पृ० ११७ व ३००

§‡ टाड राजस्थान, भाग २, पृ० ३९०-३९४

†† माधुरी, आषाढ़, सं० १९८१; इलियट हिस्ट्री जिल्द ७, पृ० ४९२ तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, संख्या १

** अलीगढ़ गज़ेटियर का इतिहास-भाग तथा माधुरी, चैत्र १९९० वि०

१०—असोथर नरेश भगवन्तराय खीची, सं० १७७० वि० से १७९२ वि० तक।*

११—बाजीराव पेशवा, सं० १७७७ वि० से १७९७ वि० तक।†

१२—चिमनाजी (चिन्तामणि), सं० १७८० वि० के लगभग।‡

१३—चित्रकूटपति बसन्तराय सुरकी, सं० १७८० वि० के लगभग।§

१४—पन्ना-नरेश छत्रसाल, सं० १७२८ वि० से १७९१ वि० तक।§§

---

*नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, अङ्क १ और भगवन्तराय रासा, पृ० १

† मराठा पीपिल, पृ० २६२ और ग्रांट डफ कृत मराठा इतिहास, भाग १, पृ० ७५६

‡ ग्रांट डफ कृत मराठा इतिहास, भाग १, पृ० ४२७ और ५०३ तथा भाग २, पृ० ४५६

§सुधा, वर्ष ३, खंड १, संख्या ५, पृ० ५३०

§§छत्रसाल का जीवन-चरित्र, साहित्य भवन प्रयाग से प्रकाशित तथा छत्र-प्रकाश

५—भूषण और शिवाजी

भूषण के जितने आश्रयदाता हुए हैं, वे सब शिवाजी की मृत्यु के २०-३० वर्ष पीछे ही रंगस्थली पर आते हैं; शिवाजी के समय में नहीं। 'भूषण' की उपाधि देने वाले हृदयराम का समय भी सं० १७५० वि० के पीछे ही पड़ता है, पहले कदापि नहीं। भूषण* का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष पीछे हुआ है, फिर उनका शिवाजी के दरबार में रहना तो बहुत दूर की बात है। तब प्रश्न यह होता है कि भूषण ने शिवाजी को भूरि-भूरि प्रशंसा करके व्यर्थ ही पोथे के पोथे क्यों रच डाले ?

इसका एक प्रधान कारण है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिस समय उत्तर भारत के राजपूत शक्तिशून्य हो रहे थे, उस समय शिवाजी ही एक ऐसी सत्ता थे, जिन्होंने औरंगजेबी अत्याचारों से राष्ट्र तथा जाति की रक्षा की थी, तथा स्वराज्य की स्थापना कर राष्ट्रोद्धार किया था। इसीलिए भूषण ने उन्हें ईश्वर का अवतार माना था। शिवराज-भूषण में पचासों छन्द ऐसे मिलेंगे जिन में शिवाजी को ईश्वरावतार, देवत्व-प्राप्त अथवा

---

*शिवसिंह सरोज, पृ० ४४६

राष्ट्र-धर्म का उद्धारक कहा गया है। शिवाजी गौ, ब्राह्मण, राष्ट्र जाति और धर्म के रक्षक थे। अतः उन्हें साक्षात् शिव, और विष्णु का अवतार माना गया है। तत्सम्बन्धी कुछ उदाहरण ये हैं:—

दशरथ जू के राम भे, बसुदेव के गोपाल ;
सोई प्रगटे साहि के, श्री शिवराज भुआल ।
[शि० भू०,

तेरे ही भुजन पर भूतल को भारु अरु,
कहिबे को शेष दिगनाग हिमाचल है ।
तेरो अवतार जग पोषन भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है ।
साहिन में सरजा समत्थ सिवराज कवि,
भूषन कहत जीवो तेरोई सफल है ।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल,
बिनु काज होत काल बदनाम धरातल है ।
[शि० भू०, ८७

इन्द्रको अनुज तैं उपेन्द्र अवतार याते,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है ;
[शि० भू०, १०३

इसी प्रकार—

"तुम शिवराज ब्रजराज अवतारु आजु,
तुमहीं जगत का पोषत भरत हौ ।

और

बाँभननि देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देख काहे सुधि भृगु की करत हौ ।

[शि० भू०, ७५

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी को कृष्ण का अवतार बतलाते हुए भृगु और विष्णु की घटना की ओर संकेत किया है तथा प्रसन्नता के साथ समाज के उत्थान की प्रार्थना की है।

फिर शिवराज भूषण के छन्द १४५ में

"यक्कइ गयन्द यक्कइ तुरंग
किमि सुरपति सरिवर करहि,"

कहकर शिवाजी को इन्द्र से भी बड़ा बतलाया गया है।

इस से भी उत्कृष्ट रूप में भूषण कहते हैं :—

"सीता सँग सोहत सुलच्छन सहाय जाके,
सरजा शिवाजी राम ही को अवतार है।

यहाँ शिवाजी को स्पष्ट रूप से राम का अवतार बतलाया गया है।

नीचे के छन्द में भी भूषण ने शिवाजी को 'हरि' का अवतार माना है।

ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोषत संकर सृष्टि संहारन हारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप काज सँवारे सबै हरि वारे।

(शि० भू०, २२८

दारुन दहत हिरनाकुस बिदारिबे कों,
भयौ नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यों ही रावन के मारिबे कों,
रामचन्द्र भयौ रघुकुल सरदार है।
कंस के कुटिल बल बंसन बिधुंसिबे कौं,
भयो यदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथ्वी पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे कों तेरो अवतार है।
(शि० भू०, ३५०

इस छन्द में नृसिंह रूप को 'तेज बिकरार', रामको 'रघुकुल-सरदार', और कृष्ण को 'वसुदेव कुमार' कहकर, तथा शिवाजी को 'अवतार', मानकर चारों की साम्यावस्था का बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार के अनेकों छन्द जिनमें भूषण ने शिवाजी को स्पष्टतया ईश्वर का अवतार माना है, उदाहरण स्वरूप दिये जा सकते हैं।

शिवाजी की अवतार रूप में स्थिरता बनी रहने के लिए आशीर्वाद देते हुए भूषण ने अपने ग्रन्थ शिवराज-भूषण के अन्त में लिखा है :—

एक प्रभुता को धाम, सजे तीनों वेद काम,
रहै पंच आनन षडानन सरबदा।
सातो बार आठौ जाम जाचक निवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपान हरि गदा।

शिवराज भूषण अटल रहै तौलौं,
जौलौं त्रिदस भुवन सब राजै औ नरमदा।
साहि-तनै साहसिक भौंसिला सुरज बंस,
दासरथि राज तौलौं सरजा वीर सदा।

(शि० भू०, ३८१

इस कवित्त में भूषण ने शिवाजी के अवतार की दाशरथिराम के अवतार से तुलना करते हुए उन्हें 'नव अवतार' माना है, तथा अपने ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' के स्थायित्त्व (स्वर्ग और नर्मदा नदी जब तक रहै तब तक) के लिए प्रार्थना की है। इस छन्द में शिवाजी भौंसिला का अवतार स्थिर (थिर) रखने का भी स्पष्ट उल्लेख है। साथ ही शिवाजी की तलवार को हरि गदा' के रूप में प्रदर्शित कर उस अवतार की पुष्टि की गयी है। यहाँ 'दासरथिराज' और 'नव अवतार थिरराजे' शब्दांश विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

इसके अनन्तर भूषण ने अपने भावों को शिवराज-भूषण के अन्तिम दोहे में और भी अच्छी तरह व्यक्त कर दिया है:—

पुहुमि फणनि रवि ससि पवन, जब लौं रहै अकास ;
सिव सरजा तब लौं जियौ, भूषन सुजस प्रकास।

(शि० भू०, ३८२

यहाँ भूषण शिवाजी के सुयश के प्रकाश को (शिवाजी को नहीं) जीवित रहने का आशीर्वाद देते हैं।

इन उदाहरणों से हम भूषण की आभ्यन्तरिक भावनाओं का अनुमान सहज ही कर सकते हैं कि उन्होंने किन-किन प्रेरणाओं से शिवाजी ही को (अन्य किसी को नहीं) आदर्श रूप में चित्रित किया था; उनके हृदय में शिवाजी के लिए कौन सा स्थान था; वे सारे देश में चक्कर लगाते हुए शिवाजी की प्रशंसा के गीत क्यों गाते फिरते थे तथा किन-किन कारणों से वे उनका ईश्वर के रूप में प्रतिपादन कर रहे थे ?

इन सब का स्पष्ट उत्तर एक ही है। भूषण का प्रधान लक्ष्य था. शिवाजी के आदर्श पर राष्ट्र का एक संगठन करना तथा अत्याचारी औरंगजेब के साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करके स्वराज्य की स्थापना कर धर्म की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहना। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति में भूषण ने अपना सारा जीवन लगा दिया था।

उन्होंने शिवराज-भूषण में लिखा है :—

नृप समाज में आपनी, होंन बड़ाई काज ;
साहि तनै सिवराज के, करत कवित कविराज।

[शि० भू०, २७८

तथा—

को कविराज सभाजित होत,
सभा सरजा के बिना गुन गाये।

[शि० भू०, १२३

इससे स्पष्ट है कि वे शिवाजी की प्रशंसा क्यों करते-फिरते थे।

भूषण ने शिवाजी को छोड़कर अन्य किसी को ईश्वरावतार नहीं माना और न किसी को अनुकरणीय ही बतलाया है। शिवाजी का अनुकरण करने वाले राजाओं की ही उन्होंने प्रशंसा की है। इनमें भगवन्तराय खीची, छत्रपति छत्रसाल, सवाई जयसिंह और बाजीराव पेशवा मुख्य थे। कुमाऊँ नरेश को भूषण ने जो उत्तर दिया था, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि उनके आदर्श केवल शिवाजी थे और वे ही तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन के प्रसिद्ध एवम् सर्व प्रधान नेता थे।

राजाओं के संगठन का कारण

भूषण ने राजाओं को ही अपना आश्रयदाता बना कर उन्हीं के द्वारा राष्ट्र-संगठन को दृढ़ किया था। तत्कालीन भारत-समाज में राजा ही समाज की एकमात्र केन्द्रीभूत सत्ता थी। प्रजा राजा को ईश्वर का अंश मानती थी। भिन्न-भिन्न राजाओं के रूप में सामाजिक सत्ता का आभ्यन्तरिक स्वरूप अनुभूत कर, भूषण ने राजाओं को ही अपना केन्द्र निर्धारित करते हुए उन्हीं के द्वारा जन-साधारण को संगठित करने का उद्योग किया था। इसी दृष्टि से उन्होंने उत्तरी भारत में सवाई जयसिंह को और दक्षिणी भारत में छत्रपति शाहू और बाजीराव पेशवा को जनता का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए उत्साहित किया था।

यद्यपि उस समय राजाओं में एक निश्चित और सुदृढ़ संगठन की विचारधारा एवं राष्ट्रीय एकरूपता की कमी थी, फिर भी देश में औरंगजेब के विरोधी भावों का आधार लेकर हिन्दुत्व

की एक प्रबल धारा बह निकली थी। बहुत से मुसलमानों का हार्दिक सहयोग मिलने से, भारत में राष्ट्रीयता के नवीन रूप का प्रस्फुटन हो उठा था, जिसके पोषक भूषण ही कहे जा सकते हैं। उनके प्रयत्न से औरंगजेब द्वारा उत्तेजित हिन्दू-मुसलमानों की समाज-विरोधी भावनाओं का अवरोध हो रहा था और देश में शान्ति स्थापित होने लगी थी। यह सत्य है कि भूषण ने औरंगजेब के प्रति घृणा फैला कर सामाजिक संगठन में सफलता पायी थी, परन्तु इस प्रचार में जातीय द्वेष की गन्ध नाममात्र को भी न थी। उन्होंने राष्ट्रीय विचारों के सम्मिश्रण द्वारा ही स्वराज्य की स्थापना को अधिक दृढ़ीभूत करने का प्रयत्न किया था।

६—भूषण की विशेषताएँ

भाषा पर विचार

भूषण की रचना में भाषा का अपना निजी महत्त्व है। उनकी भाषा ओजपूर्ण तथा वीर रस के लिए नितान्त अनुकूल है। उनकी भावपूर्ण रचना में वह अँगूठी में नगीने की भाँति जड़ी हुई है। उसका स्वरूप यद्यपि शुद्ध ब्रजभाषा के ढाँचे में ढला हुआ है, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भ्रमण करने के कारण, उनकी रचना में अन्य प्रान्तों के अनेकों शब्द अनायास ही आ मिले हैं और वहाँ ऐसे घुल-मिल गये हैं कि वे भिन्न भाषा के प्रतीत ही नहीं होते। यथा—

माची, चिंजी, चिंजाउर, भटी, बादरखाँ, हुन्नै, और बरगी, आदि शब्द मराठी प्रयोगों से लिए गये हैं। शिवाजी की प्रशंसा में छन्द रचने के कारण तथा दक्षिण में बहुत काल तक रहने से उनकी रचना में मराठी शब्दों के प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।* एदिल, खुमान, और सरजा शब्द भी मराठी से ही लिये गये है।

इनके अतिरिक्त अकर, ठइ, लिय, भुवाल, अरि, और बारगीर इत्यादि शब्द भिन्न प्रान्तों से लिये गये हैं।

भूषण की भाषा में फारसी, अरबी तथा तुर्की भाषा के भी बहुत से शब्द भरे हुए हैं। जहाँ मुसलमानों के सम्बन्ध की बातचीत है, वहाँ तो उन शब्दों की बहुलता पायी जाती है। यथा—

छूट्यौ है हुलास आमखास एक संग छूट्यौ,
हरम, सरम एक संग बिनु ढंग ही।
[शि० भू० १२०

कीरति कौ ताजी करी बाजी चढ़ि लूटि कीन्हीं,
भई सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की।
[शि० भू० १२५

जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो जोऽब,
[शि० भू० ११८

---

* शिवाजी का चरित्र और उनकी ऐतिहासिक घटनाएँ जानने के लिए 'शिव भारत' तथा अन्य मराठी ग्रन्थों का अवलोकन वांछनीय है।

इसी प्रकार जहान, दरगाह, बखतबुलन्द, पेसकसैं, मुलुक, बलन्द, जोरावर, उजीर, दिल, अदली, दरकी, गरीबनेवाज, बालम, गरबीले, विलायति, रसाल, गुसल खाने, हिम्मत, इलाज, खजाने, मिजाज, दौलति, उमराव, नाहक, जरबाफ, रुमाल, ख्याल, और दिवाल इत्यादि सैकड़ों तुर्की शब्दों की भरमार है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इन शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु भूषण की रचना में ऐसे शब्दों का प्रयोग अधिक है। सामयिक परिस्थिति और मुसलमानो के संसर्ग में रहने के कारण ये प्रयोग स्वाभाविक हैं।

भूषण की रचना की एक विशेषता यह भी है कि ये शब्द उसमें ऐसे घुल-मिल गये हैं कि पढ़ने समय जरा भी नहीं खटकते। इन शब्दों के तद्भव रूपों से उनमें भारतीयता भी आ गयी है। भाषा में इस प्रकार की वृद्धि उसकी समृद्धि को बढ़ा देती है और उसमें शब्दों का कभी अभाव नहीं रहता।*

भूषण की रचना में कहीं-कहीं पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त वीर गाथा काल के शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है, जैसे, किन्निय, पब्बय, नैर, पुहुमि, किन्ति इत्यादि। ऐसे प्रयोग भूषण के समय में साधारण बोलचाल में प्रयुक्त नहीं होते थे, परन्तु भाषा में ओज लाने के लिए ही उन्होंने कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग किये हैं।

---

* ऐसे प्रयोग हमें ग्यारहवीं शताब्दी से ही हिन्दी काव्यों में मिलने लगते हैं।

भूषण ने व्रजभाषा के मूल स्थान (सौरसैनी प्रान्त) की बोली के प्रचलित, परन्तु साहित्य में कम प्रयुक्त होने वाले शब्दों को भी अपनी कविता में स्वतन्त्रतापूर्वक स्थान दिया है। यथा:—

ओत (शान्ति), पेली (ढकेल दी), कट्ठ (कठा) घर की बाहरी सीमा, रट्ठ (ढेर) और छिया (तुच्छ) इत्यादि।

इसी प्रकार अवधी, बुँदेलखंडी, और बैसवाड़ी आदि भाषाओं के प्रयोग भी उनकी रचना में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे, धरची, धुरकी, केरी, कीबी, और धौं इत्यादि।

शिवराज-भूषण से पहले व्रजभाषा का कोई ग्रन्थ वीर-रसात्मक नहीं था। 'वीरसिंहदेव चरित' और 'रतन बावनी' में थोड़े से वीरतापूर्ण वर्णन अवश्य मिलते हैं, परन्तु उनमें बुँदेल-खंडीपन और भाषा की कृत्रिमता होने से रस के परिपाक में बाधा पड़ती है और पढ़ने में आनन्द नहीं आता। इन रचनाओं में ओज और प्रसाद की भी न्यूनता है। रासौ आदि में डिंगल भाषा प्रयुक्त हुई है, जो बोलचाल की भाषा ही नहीं है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' की भी वही दशा है। वह अपभ्रंश भाषा में लिखी गयी है। 'बीसलदेव रासौ' और 'आल्हा' के प्राचीन रूप लुप्तप्राय हैं। एक दूसरे के द्वारा वे केवल गायन के रूप में परिवर्तित होते चले आये हैं। अन्य दो-एक ग्रन्थ 'राजविलास' आदि मिलते हैं, परन्तु उनमें न तो भूषण की उदात्त भावनाएँ ही हैं और न वैसी भाषा ही दिखलायी देती है।

खुशामदी कवियों और चारणों की अपने अपने आश्रय-दाताओं के लिए रचित चाटुकारितापूर्ण रचनाएँ उक्त पद की अधिकारिणी नहीं हो सकतीं और न वे वीर काव्य ही मानी जा सकती हैं, क्योंकि उनमें शृंगारिक भावनाएँ भी मिश्रित कर दी गयी हैं। अतः वीररसात्मक, ओजपूर्ण शुद्ध रचनाओं में सर्व प्रथम भूषण की ही कविता पर दृष्टि पड़ती है।

वीर रस के उपयुक्त ओजपूर्ण भाषा ढूँढ़ना भूषण के लिए बिल्कुल नवीन मार्ग था। इतना होते हुए भी भूषण की भाषा में न तो कृत्रिमता प्रतीत होती है और न शिथिलता ही। सब शब्द साँचे में ढले हुए से और बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं, मानो वह भाषा पहले से ही मँजी-मँजायी भूषण के हाथ में आयी थी। उसमें केशवदास की भाषा का बनावटीपन और भद्दापन कहीं पर भी दृष्टिगत नहीं होता। शृंगार आदि रसों का सफल वर्णन करने के लिए माधुर्यपूर्ण कोमल कान्त पदावली वाली ब्रजभाषा का पथ तो सूरदास ने प्रशस्त कर दिया था; गोस्वामी तुलसीदास जी ने भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों को सब रसों के उपयुक्त बना कर एक अनुकरणीय आदर्श अवश्य रख दिया था। परन्तु वीर रस के लिए नितान्त अनुकूल, ओजपूर्ण और मुहावरेदार ब्रजभाषा की कई प्रणालियों का अनुगमन कर एक नवीन आदर्श प्रस्तुत कर देना भूषण ही का काम था। उनकी अमृतध्वनियों में जहाँ वीर गाथा काल का रूप दिखलायी देता है, वहाँ शिवाबावनी, छत्रसाल दशक तथा

अनेक फुटकर छन्दों में शुद्ध ब्रजभाषा का ओजपूर्ण निखरा हुआ रूप—जो वीर रस के ही योग्य है—पाया जाता है। इससे हम भूषण के भाषा विषयक आधिपत्य का अनुमान कर सकते हैं।

भूषण ने मुहावरों और कहावतों का भी बहुलता से उपयोग किया है। उनके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

(१) गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली दल की;

(२) स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी;

(३) ग्रीवा नै जात;

(४) छाती दरकति है;

(५) पुहुमी के पुरहुत;

(६) भान्यो साहि को इलाम;

(७) दंत तोरि तखत तरे ते आयो सरजा;

(८) नाह दिवाल की राह न धाओ;

(९) कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं;

(१०) तृन ओठ गहे;

(११) कुल चन्द कहावे;

(१२) भूलि गयो आपनी उचाई लखे कद की।

इन मुहावरों का भूषण ने बड़ी स्वतन्त्रता से और सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

मुहावरों की भाँति लोकोक्तियाँ भी उनकी रचना में अनायास आ गयी हैं। उदाहरण के लिए,

(१) सौ सौ चूहे खाय के बिलारी बैठी तप के;

(२) कालिह के जोगी कलींदे के खप्पर;

(३) अजौं रविमंडल रुहेलन की राह है;

(४) छागौ सहै क्यों गयन्द को झप्पर;

(५) जे परमेश्वर पर चढ़ैं तेही साँचे फूल;

(६) सूबा ह्वै दक्खिन चले धरे जात कित जीव।

गोस्वामी जी की चौपाइयों की तरह भूषण के अनेक छन्दांश लोकोक्तियाँ बन गये हैं।

(१) तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती हैं;

(२) बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं;

(३) नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं;

(४) थारा पर पारा पारावार यों हलत है। इत्यादि

इन उदाहरणों से हम भूषण के भाषा विषयक प्रभाव का अनुमान कर सकते हैं। इनकी रचना में जहाँ एक ओर परिष्कृत ब्रजभाषा के दर्शन होते हैं, वहाँ दूसरी ओर खड़ी बोली की रचनाएँ भी यत्र-तत्र देख पड़ती हैं। भूषण ग्रन्थावली से इसके कुछ नमूने उपस्थित किये जाते हैं :—

(१) अफजल खाँ को गहि जाने मैदान मारा,
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।

(२) बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने,
भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा।

(३) भुक्के निसान सक्के समर मक्के तक्क तुरक्क भजि।

(४) औरंग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जुराना भयो जालिम जमाना को।
(५) शिवा की बड़ाई और हमारी लघुताई क्यों,
कहत बार बार यों पात साह गरजा।

भूषण ने व्रजभाषा की उकारान्त प्रणाली की मनोहर शब्दावली को ग्रहण कर अपनी रचना में माधुर्य लाने का भी प्रयत्न किया है। जैसे, गोतु उदोतु, सोतु, होतु, बाँधियतु, काटियतु, बाहियतु इत्यादि।

इसे कुछ सज्जन अवधी का रूप बतलाते हैं, परन्तु वास्तव में यह व्रजभाषा का ही रूप है और सौरसेनी प्रान्त में बहुत प्रचलित है। प्राचीन काल से व्रजभाषा के साहित्य मे ऐसे रूप प्रयुक्त होते चले आ रहे है, अतः उन्हें अवधी का रूप कहना भूल है।

व्रजभाषा विषयक प्रचलित भ्रान्ति पर, विद्वानों का ध्यान इस स्थान पर आकर्षित करना अनुचित न होगा। आजकल मथुरा-बृन्दावन के समीप प्रचलित बोली ही व्रजभाषा समझी जाती है। परन्तु साहित्य में जो भाषा इस नाम से प्रयुक्त होती है, वह व्रज की प्रचलित बोली नहीं है। वहाँ पर कर्म के रूप में सर्वत्र राम कूं, वाकूं, मोकूं, तोकूं तथा करण व अपादान के रूप में रामसूं, वासूं, तासूं, मोसूं, लाठीसूं, आदि प्रयोग प्रचलित हैं। इसी प्रकार वहाँ क्रियाओं और सर्वनामों में भी ऐसा ही विधान पाया जाता है, परन्तु साहित्य में इन शब्दों के स्थान पर मोकों, तोकों, वाकों, हमकों, रामकों, श्यामसों, लाठी-

सों, उनसों आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार के और भी ऐसे बहुत से रूप मिल सकते है जिनसे ब्रज की प्रचलित बोली और साहित्यिक ब्रजभाषा में बहुत अन्तर जान पड़ता है। मथुरा-वृन्दावन आदि में साहित्यिक भाषा का भी प्रचार होने से ब्रजभाषा के दोनों रूपों के दर्शन होते हैं, परन्तु गाँवों में केवल प्रथमरूप ही दिखायी देता है।

इस अन्तर का प्रधान कारण यह है कि साहित्यिक ब्रजभाषा, सौरसैनी अपभ्रंश से क्रम-विकास द्वारा, वर्तमान रूप में आयी है और अब से दो हजार वर्ष पूर्व सौरसेनपुर (वर्तमान बटेश्वर) सौरसेनी भाषा का प्रधान केन्द्र था। इसका उल्लेख मेगास्थनीज ने अपने 'एरियन' नाम ग्रन्थ में किया है और इसकी गणना भारत के प्रसिद्ध नगरों में की है। यही नगर महाभारत से पूर्व श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव तथा पितामह सूरसेन की राजधानी थी। सूरसेन ने इसे बसाकर इसका नाम सौरसेन-पुर रक्खा था। वहाँ आज भी अनिरुद्धखेड़ा और प्रद्युम्नपुरा के मोहल्ले खँडहरों के रूप में विद्यमान हैं, जिसका उल्लेख आर्कियालोजीकल सर्वे की रिपोर्टों में भी मिलता है।*

अतः स्पष्ट है कि भूषण की भाषा अत्यन्त प्रभाव-शालिनी, ओजस्विनी, परिष्कृत और मुहावरेदार शुद्ध ब्रज-

---

*आर्कियालोजीकल सर्वे रिपोर्ट, १८७१-७२, जिल्द ४, पृ० १५८; तथा सरस्वती पत्रिका में 'सौरपुर का प्राचीन विवरण' शीर्षक लेख, भाग २७, संख्या ४, पृ० ४६३।

भाषा है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का स्वतन्त्रता से प्रयोग कर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उन पर भी उनका काफ़ी अधिकार था। वीर रस के नितान्त अनुकूल होने से भूषण की भाषा ने वीर, रौद्र, और भयानक रसों के साहित्यों के लिए पथ-प्रदर्शन किया।

भूषण की शैली

भूषण की शैली साधारणतया विवेचनात्मक तथा संश्लिष्ट है। विवरणात्मक प्रणाली का उन्होंने बहुत ही कम उपयोग किया है। उनकी रचना खंड काव्य के रूप में न होने के कारण इस शैली के लिए अधिक गुंजायश भी न थी। फिर भी इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। रायगढ़ के वर्णन में विवरणात्मक प्रणाली ही प्रयोग में लायी गयी है। उदाहरण के लिए देखिये,

कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्ध मनि सोपान हैं,
जहँ हंस सारस चक्रवाक बिहार करत सनान हैं।
कितहूँ बिसाल प्रवाल जालन जटित अंगन भूमि हैं;

\+ + × +

लवली लवंग यलानि केरे लाख हों लगि लेखिये।
कहुं केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करबीर हैं;
कहुँ दाख दाड़िम सेब कटहल तूत अरु जम्भीर हैं।

\+ + +

पुन्नाग कहुँ कहुँ नाग केसरि, कतहुँ बकुल असोक हैं,
कहुँ ललित अगर गुलाब पाटल पटल बेला थोक हैं।

[शि० भू० १६-२१

यह शैली बहुधा काव्य-ग्रन्था में यत्र-तत्र प्रयुक्त की जाती है, परन्तु इसके अधिक प्रयोग करने से काव्य में नीरसता आ जाती है। यह दोष छत्रप्रकाश में दृष्टिगोचर होता है। फुटकर छन्दों में इस शैली का अधिकतर प्रयोग करने से उसमें चमत्कार नहीं आता। फिर भूषण का शिवराज-भूषण एक आलंकारिक ग्रन्थ है। उसमें मुक्तक छन्दों का ही प्रयोग हो सकता है। यदि उसमें विवरणात्मक प्रणाली का प्रयोग किया जाता तो साहित्यकता का अभाव हो जाता, जो आलकारिक ग्रन्थ में सम्भव नहीं है।

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि भूषण को राज-दरबारों से काम लेना था। दरबारों में काव्य ग्रन्थों के सुनाने का न तो अवसर होता हं, और न अवकाश। वहाँ तो कवित्त, सवैया, छप्पय, अमृतध्वनि आदि छन्द ही, जिनमें चमत्कारपूर्ण और रस से सराबोर रचना हो, अपना प्रभाव डाल सकते हैं। इसके लिए दरबारी कान पहिले ही से अभ्यस्त थे। भूषण ने इसी प्रथा का अनुसरण कर बड़े-बड़े राज दरबारों में अपना पूरा सिक्का जमा लिया। साथ ही उनका विषय नया, सामयिक और उत्साह-वर्द्धक था, जिसने राजदरबारों का ध्यान बर्बस अपनी ओर

खींच लिया। अतः स्पष्ट है कि यद्यपि भूषण ने विवरणात्मक शैली का बहुत कम प्रयोग किया है, परन्तु जहाँ कहीं उसका प्रयोग है, वह रचना बड़ी ही सुन्दर परिमार्जित, और ओजपूर्ण है। उदाहरणार्थ,

छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में।
ताही समै सिवराज हाँकि मारि हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीर बर जोट में।
भूषन भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहैं,
किम्मत यहाँ लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दे दे मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में।
(शि० बा०, ३१

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी के युद्ध-कौशल और किला-विजय करने के ढङ्ग का बड़ा ही विशद तथा ओजपूर्ण वर्णन किया है। ऐसे ही और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे हम भूषण के विवरणात्मक रचना-सौष्ठव का अनुमान कर सकते हैं।*

---

* शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा फुटकर छन्दों में कई स्थानों पर इस शैली का अनुगमन हुआ है।

विवेचनात्मक शैली

भूषण की सब से प्रसिद्ध और मँजी हुई शैली विवेचनात्मक है। इसी शैली के कारण भूषण वास्तव में महाकवि भूषण कहलाये। इसके कुछ उदाहरण ये हैं :—

कवि कहैं करन करन जीत कमनैत,
अरिन के उर माँहि कीन्हों इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरन को मेट्यो अहमेव है।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज काज देखि कोऊ पावत न भेव है।
कहरी यदिल मौज लहरी कुतुब कहैं,
बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है।
(शि० भू०, ७२

इस छन्द में कवि ने शिवाजी के प्रभाव का अत्यन्त ही मनोरंजक ढङ्ग से विश्लेषण किया है। उन्होंने आदिलशाह, कुतुबशाह और निजामशाह को क्रमशः कहरी, मौज-लहरी और जितैयादेव कहकर शिवाजी के प्रति तीनों राज्यों की वास्तविक भावनाओं को बड़ी खूबी से प्रदर्शित किया है। यह भूषण की की तीव्र एवम् विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। निजाम की 'बहरी' उपाधि भी कौतूहल से रिक्त नहीं है।

नीचे के उदाहरणों में शिवाजी के आतंक और प्रभाव का अत्यन्त सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है।

दौलति दिली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।
भूषन भनत लरि लरि सरजा सों जङ्ग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं।
सुधर्यौ न एकौ साज भेजिबेही काज,
बड़े बड़े बेइलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेरु करु सिवाजी सों बैर करि,
गैरि करि नैर निज नाहक उजारे तैं।
[शि० भू०, २८१

सिंह थरि जाने बिनु जावली जङ्गल हठी,
भटी गज एदिल पठाय करि भटक्यौ।
भूषन भनत देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मत हिये में धारि काहुवै न हटक्यौ।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मद्गल अफजलै पञ्जा बल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यौ।
[शि० भू०, ६६

इस छन्द में विवेचनात्मक शैली का बड़ा ही सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। अफजल रूपी हाथी को शेर शिवाजी से

पटकवा कर आकुल खाँ के साथ अंकुस खाँ के भागने का बहुत ही उत्तम विवेचन किया गया है। अंकुश और गज का सामञ्जस्य भी सुन्दर है।

शिवराज-भूषण के छन्द नं० ६६, ७७, ८३, ९८, १०३ इत्यादि में इस विवेचनात्मक शैली के बहुत ही उत्कृष्ट नमूने मिल सकते हैं। भूषण के हाथ में यह शैली खूब सफल हुई है और ये छन्द भी बहुत उत्तम बन सके है।

संश्लिष्ट शैली

जिस रचना में विवरणात्मक तथा विवेचनात्मक दोनों शैलियों का समावेश रहता है, उसे संश्लिष्ट शैली कहते है। भूषण की यह शैली भी बहुत सफल हुई है। उदाहरणार्थ :

दानव आयो दगा करि जावली,
दीह भयारो महामद मार्‌यो।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि,
भेंटिबे कौं निरसंक पधार्‌यो।
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि,
ऊपर ही सिवराज निहार्‌यो।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिंदहि
मानो मयन्द गयन्द पछार्‌यो।

[शि० भू०, ३८

भूषण की यह शैली खूब मँजी हुई जान पड़ती है। उनकी रचना में इसका बाहुल्य भी है। उदाहरणार्थ,

आये दरबार बिललाने छड़ीदार देखि,
जापता करन हारे नेकहू न मनके।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भये उमराय तुजुक करन के।
साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि बने ब्योंत अनबन के।
ग्रीष्म के भानु सों खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के।

[शि० भू०, ३८

भूषणकालीन युग में आलंकारिक शैली का ही विशेष प्रचार था। इसलिए उनकी रचना में भी अलंकारों की अधिकता है। उनकी फुटकर रचनाओं में भी अलंकार अनायास आते गये हैं। इनके कारण भाषा और भाव के प्रवाह में कोई व्यवधान नहीं दिखायी देता, वरन् वे भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए ही आये हैं।

भूषण की शैली की विशेषताएँ

भूषण की शैली की अनेक विशेषताएँ हैं। वे युद्ध के बाहरी साधनों का ही वर्णन कर सन्तोष नहीं कर लेते, वरन् मानव-

हृदय में उमंग भरने वाली भावनाओं की ओर उनका सदैव लक्ष्य रहता है। उनका शब्द-विन्यास जहाँ वीर रस के नितान्त अनुकूल है, वहाँ उनकी भावना भी उत्साहवर्द्धक और उत्तेजक है। इस प्रकार शब्दों और भावों का सामञ्जस्य भूषण की रचना का विशेष गुण है। यथा :—

राम कहा, द्विजराम कहा, बलराम कहा रन में अनुरागे।
बाज कहा, मृगराज कहा, अति साहस में सिवराज के आगे।
[शि० भू०, २१

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
तेजतम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ वंस पर सेर सिवराज हैं।
[शि० भू०, २६

चपला चमकतीं न फेरत फिरंगे भट,
इन्द्र को न चाप रूप वैरष समाज को।
[शि० भू०, ८१

मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किए सैल हैं।
[शि० भू०, ६६

दल के दरारे हू ते कमठ करारे फूटे,
केरा केसे पात बिहराने फन सेस के।
[शि० बा, ८

बीजापुर वीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके।

इस प्रकार भूषण की रचना में जैसा उत्कृष्ट वीर रस-परिपाक हुआ है, हिन्दी साहित्य में वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

भूषण के बहुत से छन्द इस प्रकार के हैं, मानों वे किसी व्यक्ति के सामने पहुँच कर उसे धमका रहे हों। नीचे के छन्द देखिये :-

बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा।
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिल्ली दलका दलन अफ-
जल का मलन सिवराज आया सरजा।
[शि भू०, १६१

बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल को।
[शि० बा, ३३

भूषन सुकवि कहैं सुनौ नवरँगजेब,
एते काम कीन्हें फेरि पातसाही पाई है।
[शि० बा, ४९

सूबेदार बहादुरखाँ की स्त्रियों की ओर से भूषण नवाब से कहते हैं :—

पीय पहारन पास न जाहु यों तीय बहादुर सो कहैं सोषैं;
कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनिभूषण भौंसिलाभूप के रोषैं ?

[शि० भू०, ७७

या पूना में मत टिको, खान बहादुर आय;
ह्याईं साइत खान को, दीन्ही सिवा सजाय ।

[शि० भू०, ३४०

शिवाजी को सम्मुख मानकर भी भूषण ने अनेकों छन्द कहे हैं। उनमें शिवाजी के ईश्वरत्व की सर्वव्यापकता का भी पुट मिला हुआ है, मानो उन्हें भूषण की सफलता के लिए आह्वान किया जा रहा हो। यथा—

आजु सिवराज महाराज एक तुही,
शरनागत जनन कों दिवैया अभैदान को ;
फैली महि मंडल बड़ाई चहुँ ओर,
ताते कहिए कहाँ लौं ऐसे बड़े परिमान को ।
निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत बीर,
जोधन को रन देत जैसे भाऊ खान को ।
दिल दरियाव क्यों न कहैं कविराय तोहिं,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान को ।

[शि० भू०, ३४८

सूर्य भगवान को सम्बोधन करके भूषण कहते हैं :—

तरनि, जगत जलनिधि तरनि, जै जै आनन्द ओक;
कोक कोकनद सोक हर, लोक लोक आलोक।

[शि० भू०, २

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण ने बहुत से छंद व्यक्तियों को सम्बोधन कर कहे हैं, यद्यपि वे उनके सम्मुख कभी नहीं गये। बहलोल खाँ और औरङ्गजेब आदि को सम्बोधन कर जो छन्द कहे गये हैं, वे उनके सामने कदापि नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार शिवाजी सम्बन्धी छन्द शिवाजी के सामने वर्णन करने योग्य नहीं हैं। शिवाजी को ईश्वर का अवतार मान कर, वे छन्द उसी प्रकार कहे गये हैं, जिस प्रकार सूर्य की स्तुति का छन्द कहा गया है।

ऊपर वर्णित शैलियों के अतिरिक्त भूषण की एक शैली प्रश्नोत्तर रूप में भी है। यथा—

दुरगहि बल पंजन प्रबल, सरजा जिति रन मोहिं;
औरंग कहै दिवान सों, सपन सुनावत तोहिं।

[शि० भू० ६३

सुनि सु उजीरन यों कह्यो, 'सरजा सिव महाराज';
भूषन कहि चकता सकुचि, 'नहिं सिकार मृगराज।'

[शि भू०, ६४

को दाता को रन चढ्यौ, को जग पालन हार ?
कवि भूषन उत्तर दियो, सिव नृप हरि औतार।

[शि० भू०, ३१४

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लये हैं;
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कैं, फकीर ह्वै देस विदेस गये हैं।
लोग कहैं इमि दच्छिन जेय, सिसौदिया रावरे हाल ठये हैं;
देत रिसाय कै उत्तर यों, 'हमहीं दुनियाँ तैं उदास भये हैं।'

[शि० भू०, ३१६

ऐसे ही प्रश्नोत्तर शिवराज भूषण के ६०, ३१३, ३१७. ३१९, ३२१ तथा अनेक छन्दों में दृष्टिगोचर होते हैं।

भूषण की शैली की एक विशेषता और है। किसी बात को समझाने के लिए वे इतने अधिक उदाहरण देते हैं कि वह विषय अनायास समझ मे आ जाता है। शिक्षा का यह सर्वोत्तम सिद्धान्त है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं :—

इन्द्र जीमि जंभ पर ....
त्यों म्लेच्छ वंश पर शेर शिवराज है।

[शि० बा०, २]

शक्र जिमि शैल पर ....
म्लेच्छ चतुरङ्ग पर चिन्तामणि देखिये।

कामिनि कन्त सों, जामिनि चन्द सों,
दामिनि पावस मेघ घटा सों;

कीरति दान सों सूरति ज्ञान सों,
प्रीति बड़ी सनमान महा सों।
भूषन भूषन सों तरुनी,
नलनी नव पूषण देव प्रभा सों;
जाहिर चारहु ओर जहान,
लसै हिन्दुआन खुमान सिवा सों।

[शि० भू०, १२६

अटल रहे हैं दिगअन्तन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूषन भनत गुन भरि कै।
हाड़ा राठौर कछवाहे गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चँवारू धरि डरि कै;
अटल शिवाजी रह्यो दिल्ली कौं निदरि,
धीर धरि ऐंड धरि तेग धरि गढ़ धरि कै।

[शि० भू०, १३३

इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण भूषण की रचना में मिलते हैं। ऐसी रचनाओं में ओज का प्रस्फुटन खूब हुआ है। इस छन्द की अन्तिम पंक्ति में दीपक द्वारा अपार ओज भर दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस समय भूषण अपनी जोशीली वाणी से अपने कवित्त सुनाते होंगे; उस समय सारा दरबार दंग

रह जाता होगा। भूषण की यह शैली राज-दरबारों तथा समाज में बड़ा ही गहरा प्रभाव डालती थी। शिवा-बावनी के छन्द नं० ३, ४, ५ तथा शिवराज-भूषण के अनेकों छन्द इसी शैली के अन्तगर्त आते हैं।

भूषण की रचनार्थ शैलियों के यथा स्थान परिवर्तन से पढ़ने अथवा सुनने में जी नहीं ऊबता। नवीनता रहने के कारण उसमें नीरसता कभी नहीं आने पाती।

भूषण यदि एक स्थान पर सॉसारिक लेन-देन के रूप में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कर नवीनता उत्पन्न कर देते हैं तो दूसरे स्थान पर इस शैली को दूसरा रूप दे देते हैं। यथा--

जङ्ग जीति लेवा ते वे ह्वै के दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेबा महिपाल की।
[छत्रसाल दशक, ४

संगर में सरजा सिवाजी अरि सेननि कौ,
सार हरि लेत हिन्दुआन सिर सारु दै।
भूषन भुसल जय जस कौ पहारु लेत,
हरजू को हारु हरगन कौ अहारु दै।
[शि० भू०, २४६

इस प्रकार भूषण भिन्न-भिन्न शैलियों का अनुगमन करते हुए वीर रस के विकास में पूर्ण सफल हुए हैं। उन्होंने जिस किसी शैली पर अपनी लेखनी उठायी है, उसी को सफलतापूर्वक निबाहा है।

रस निरूपण

भूषण की रचना में वीर रस का इतना सुन्दर परिपाक है कि उससे जीवन-शून्य व्यक्ति में भी नवीन स्फूर्ति और उत्साह की उमंग भर जाती है। भूषण ने वीर-रस को मथ कर उसके प्रत्येक पहलू पर पूर्ण प्रतिभा प्रकट की है। दानवीर, दयावीर, धर्मवीर, युद्धवीर, कर्मवीर और ज्ञानवीर—ये ही वीर रस के भेद माने गये हैं। भूषण की रचना में इनके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं, जिनसे उनकी वीर रस की गहरी भावना का अनुमान हो सकता है।

दानवीर का एक उदाहरण निम्नलिखित है:—

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नहिं अकुलात हैं।
भूषन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन कौ ढेरु सो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई कौ बखान करि जात है।
जाको जस टंक सातों दीप नव खंड महि-
मण्डल की कहा ब्रहमंड न समात है।

[शि० भू०, २२१

दयावीर का उदाहरण यह है:—

दिल्ली कौ हरौल भारी सुभट अडोल गाल,
चालिस हजार लै पठान धायो तुरकी।

भूषन भनत जाकी दौर ही कौ सोर मच्यौ,
एदिल की सीमा पर फौज आनि हुरकी।
भयो है उचाट करनाट नरनाहन कौं,
डोलि उठी छाती गोलकुंडा ही के धुर की।
साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब,
बाहु बल राखी पातसाही बीजापुर की।

[शि० भू० फुटकर छन्द, २४

अब धर्म वीर का भी एक उदाहरण लीजिए—

राखी हिन्दुआनी हिन्दुआन को तिलक राख्यौ,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यौ राख्यौ गुन गुनी मैं।
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कैं दिवाल राखी दुनी मैं।

[शि० बा०, २९

ज्ञान वीर का उदाहरण यह है :—

चाहत निर्गुन सगुन कौं, ज्ञानवंत की बान;
प्रकट करत निर्गुन सगुन, सिवा निवाजी दान।

[शि० भू०, १४३

शुद्ध वीर का उदाहरण यह है :—

उमड़ि कुड़ाल मैं खवासखान आये भनि,
भूषन त्यों धाये शिवराज पूर मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूँछें तरराने मुख वीर धीर जन के।
एकैं कहैं मार मार सम्हरि समर एकैं,
म्लेच्छ गिरैं मार बीच बेसम्हार तन के।
कुण्डन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के।

[शि० भू०, ३३०

भूषण ने वीर रस के अन्तर्गत अन्य रसों का समावेश कितनी चतुरता से किया है, यह नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने नीचे के छन्द में शृंगार रस को वीर रस के अन्तर्गत प्रत्यक्ष किया है।

मेचक कवच साजि बाहन बयारि बाजि,
गाढ़े दल गाजि उठे दीरघ दुखन के।
भूषन भनत समसेरें सोई दामिनी हैं,
महामद कामिनी के मान के कदन के।
पैदरि बलाका धुरवान की पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूने ही सदन के।

न करु निरादर पियासों मिलु सादर ये,
आये बीर बादर बहादुर मदन के।

[शि० भू० फुटकर छंद ४६

इस छन्द में भूषण ने शृङ्गार रस को वीर रस के रूपक में ढालकर यह प्रत्यक्ष कर दिया है कि शृङ्गार रस किस प्रकार वीर रस के अधीन हो कर काम कर सकता है।

निम्न लिखित उदाहरण शान्त रस का है :—

देह देह देह फिर पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जाने कौन जौन आइबो।
जेते मनि मानिक हैं तेते मन मानि कहैं,
धराई मैं धरे ते तौ धराई धराइबो।
एक भूख राखै भूख राखै मति भूखन की,
यही भूख राखै भूप भूखन बनाइबो।
गगन कै गौन जम गिनन न दैहैं नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो।

[शि० भू० फुटकर छंद ५५

इस छन्द में आदि से अन्त तक शान्त रस ओत प्रोत है, यहाँ कवि ने 'भूप भूपन बनाइबा,' कह कर अपने देश-व्यापी क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर अवश्य संकेत कर दिया है। इस से शान्ति की भावना में वीर रस का समन्वय हो गया है।

रौद्र रस का उदाहरण यह है :—

सबन के ऊपर ही ठाढ़ौ रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यौ,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा कौ निरखि भये,
स्याह मुख नौरङ्ग सिपाह मुख पियरे।

[शि० बा० फुटकर छंद १७

उक्त छन्द मे रौद्र रस को वीर रस के सहायक रूप में उपस्थित किया गया है।

भयानक रस का एक उदाहरण यह है :—

माँगि पठायो सिवा कछु देस,
वजीर अजान न बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों,
भूषन जो दिन दोय लगे ना।
धाक सों खाक बिजैपुर भौ मुख,
आइगो खान खवास के फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी,
दिल आदिल साह की सेना।

[शि० भू० २५९

अब वीर रस के सहयोगी करुणा रस को लीजिये:—

शुंडन समेत काटि विहद मतंगन कौं,
　　　　रुधिर सौं रंग रन-मंडल मैं भरिगौ।
भूषन भनत तहाँ भूप भगवन्त राय,
　　　　पारथ समान महाभारत सौ करिगौ।
मारे देखि मुगल तुराबखान ताही समै,
　　　　काहू अस न जानी मानौ नट सौ उचरिगौ।
बाजीगर कैसी दगाबाजी करि बाजी चढ़ि,
　　　　हाथी हाथाहाथी तैं सहादत उतरिगौ॥*

'हाथी हाथाहाथी तैं सहादति उतरिगौ' के अन्तर्गत पूर्ण करुणा रस भरा हुआ है।

वीभत्स रस को वीर रस के अन्तर्गत लाने का भी एक उदाहरण इस प्रकार है :—

दिल्ली दल दलै सलहेर के समर सिवा,
　　　　भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकत कालिका कलेजे की कलोल कर,
　　　　करि कैं अलल भूत भैरों तमकत हैं।
कहूँ रुँड मुँड कहूँ कुंड भरे श्रोनित के,
　　　　कहूँ बखतर करि झुँड झमकत हैं।

---

* नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ६ सं० २

खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध परी,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं।
[सम्मेलन की शि० बा०, २६

भूषण ने शृङ्गार रस के सहायक आश्चर्य रस को वीर रस के सहयोगी रूप में इस प्रकार दिखलाया है :—

ता दिन अखिल खल भलैं खल खलक मैं,
जा दिन शिवाजी गाजी नेक करखत है।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं।
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषन सुकबि बरनत हरषत हैं।
क्यों न उत्पात होहिं बैरिन के झुँडन में,
कारे घन उमड़ि अङ्गारे बरखत हैं।
[शि० भू० १६०

इस कवित्त मे 'कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं' कह कर भयानक रस के अन्तर्गत आश्चर्य दिखलाया गया है।

हास्य रस को वीर रस के सहयोगी रूप मे इस प्रकार दिखलाया गया है।

मारि करि पातसाही खाकसाही कीनी जिन,
छीन लीनी छिति हद सब सरदारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सबै,
हिसि गई हिम्मति ही हिय ते हजारे की।

भूषन भनत भारी धौंसा की धुकार बाजै,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़ै भारे की।
दूल्हो शिवराज भयौ दच्छिनी दमाकदार,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की।
[शि० बा० २६

शिवराज-भूषण में अनेकों छन्द हैं जो हास्य, वीभत्स, आश्चर्य और करुणा रस को व्यक्त करते हैं, परन्तु उनकी वास्तविक भावना वीर रसमय है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि भूषण की प्रभुता का उत्कर्ष वीर रस ही में मिलता है, परन्तु वीर रस के अन्तर्गत नवों रसों का समावेश करने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है।

भूषण की आलंकारिकता

अनेक विद्वानों ने भूषण की रचना में अलंकार सम्बन्धी विविध प्रकार के दोष ढूँढ़े हैं। अलंकारों के अशुद्ध लक्षण लिखने तथा भ्रमपूर्ण उदाहरण देने का भी दोष उनके सिर पर मढ़ा गया है। एक सज्जन ने लिखा है, "इन्होंने (भूषण ने) सीधे किसी संस्कृत अलंकार ग्रन्थ का भी अपना आधार नहीं बनाया, वरन् हिन्दी के कवियों में अलंकारों के सम्बन्ध में जो सामान्य भावना प्रचलित था, उसी को पकड़ा है। यही कारण है कि भूषण के लक्षण और उदाहरण, कई जगह अस्पष्ट और दूषित हैं।"

इसी प्रकार के अनेकों आक्षेप इन अलंकारों के विषय में किये गये हैं। यहाँ हमें यह देखना है कि ये आक्षेप कहाँ तक तर्कपूर्ण हैं।

विद्वान् लेखक ने सबसे प्रथम 'पंचम प्रतीप' पर विचार किया है। भूषण ने उसका लक्षण इस प्रकार लिखा है।

"हीन होय उपमेय सों नष्ट होत उपमान।"

इसी लक्षण को चन्द्रालोककार ने इस भाँति लिखा है

"प्रतीप मुपमानस्य कैमर्थ्यमपिमन्वते।"

अब प्रथम प्रदीप का उदाहरण देखिये।

यत्त्वन्नेत्र समान कान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं;
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपित्वद्गमनानुसारि गतयस्ते राजहंसा गता—
स्त्वत्साहश्य बिनोद मात्र मपिमे दैवेन न क्षम्यते।*

चन्द्रालोककार ने पंचम प्रदीप के लक्षण में 'कैमर्थ्यमपि' कह कर स्वयम् द्विविधा पैदा कर दी है। इसका कारण भी है। यह लक्षण आक्षेप के अन्तर्गत आता है, जिसका लक्षण साहित्य दर्पणकार इस प्रकार करते हैं:—

वस्तुनो वक्तु मिष्टस्य विशेष प्रतिपत्तये;
निषेधामास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्त गोद्विधा†।

---

*कुवलयानन्द, पृष्ठ १२

† साहित्य दर्पण, दशमः परिच्छेदः पृष्ठ २०२

इसी को चन्द्रालोककार ने इस प्रकार लिखा है :—

"निषेधाभास माक्षेप बुधाः केचन मन्वते*।"

यहाँ स्पष्ट है कि भूषण ने पञ्चम प्रतीप को आक्षेप की सीमा से बँचाने और द्विविधा से अलग रखने के लिए उसी स्वरूप में ग्रहण न कर यह कहा है कि "यदि उपमान उपमेय से हीन हो जाय, अथवा बिल्कुल लुप्त हो जाय तो पञ्चम प्रतीप होता है।"

भूषण को यह लक्षण चन्द्रालोक के प्रथम प्रदीप के उक्त उदाहरण के ध्यान में आने से ही सूझा है। उसी भाव पर भूषण का लक्षण घटित होता है, जो चन्द्रालोक के प्रथम प्रदीप के लक्षण "प्रतीप मुपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्"† से भिन्न है।

इस लक्षण की रचना के समय भूषण के मस्तिष्क में तीन भावनाएँ काम कर रही थीं :—

(१) उसे कैमर्थ्य से बचाना ताकि उनका लक्षण आक्षेप के भीतर न चला जाय; (२) चन्द्रालोक के प्रथम उदाहरण का समावेश कराना; और (३) द्विविधा में न रह कर लक्षण को स्पष्ट करना।

'कैमर्थ्य' रहने से आक्षेप में कहीं अन्तर्भाव न हो जाय, इसी को बचाने के लिए भूषण ने कैमर्थ्य के स्थान पर 'हीन' शब्द रखा है। भूषण का भाव यह है। पञ्चम प्रदीप के पर्यवसान में उपमान की हीनता किसी न किसी प्रकार स्पष्ट रूप से होनी

* कुवलयानन्द, पृष्ठ ४६

† कुवलयानन्द, पृष्ठ ११

आवश्यक है। अधिकतर उपमेय के आगे उपमान की तुच्छता दिखाने से वह (हीनता) व्यक्त होती है। इस दृष्टि से भूषण का लक्षण बिलकुल निर्दोष है।

पञ्चम प्रदीप के प्रथम उदाहरण में भूषण के "तो सम हो सेस सो तो बसत पताल लोक'''इत्यादि*" छन्द में उपमान के स्पष्ट रूप से लुप्त होने का भाव व्यक्त किया गया है। उसी को भूषण ने 'नष्ट' शब्द से व्यक्त किया है। यह चन्द्रालोक के प्रथम प्रदीप के उदाहरण के ढंग पर लिखा गया है।

उसके दूसरे और तीसरे उदाहरण में भूषण ने —"कुंद कहा पयवृन्द कहा''''''अति साहस में शिवराज के आगे।" † और "यों सिवराज को राज अडोल''''''कुंडलि कोल कछू न कछू है", लिखकर उपमान की तुच्छता प्रकट की है। इसे भूषण ने 'हीन' शब्द से व्यक्त किया है। 'न्यून' और हीन शब्द में महान् अन्तर है, अतः इस परिभाषा में 'व्यतिरेक' की व्याप्ति कभी हो ही नहीं सकती। फिर भी काव्य प्रकाशकार मम्मट ने उपमालंकार के प्रकरण में काव्य प्रकाश के पृष्ठ ४४६ पर लिखा है—

'रसादिस्तु व्यङ्ग्योऽर्थोऽलङ्कारान्तरञ्च सर्वत्रा
व्यभिचारी त्यगणयित्वैव तदलङ्कारा उदाहृता।'

इस कथन से यह स्पष्ट है कि एक अलंकार के साथ अन्य अलंकार अवश्य रहते हैं और वे अनायास आ ही जाते हैं, परन्तु

---

* शि० भू०, ५०

† शि० भू०, ५१

उनमें उदाहरण स्वरूप प्रधान अलङ्कार ही लिया जाता है। अतः व्यतिरेक की शङ्का पैदा करना निर्मूल है।

इन बातों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लक्षण की भूल भूषण की नहीं, वरन चन्द्रालोकार की है, जिसे आलोचक महोदय भूषण के सिर थोप रहे है। यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दी में भूषण ही एक ऐसे आचार्य हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत आचार्यों का अन्धानुकरण नहीं किया और शास्त्रानुमोदित संशोधन कर अपने आचार्यत्व की मर्यादा को अक्षुण्ण रक्खा।

दूसरा उदाहरण 'निदर्शना' का है। इसका लक्षण चन्द्रालोक में इस प्रकार है—

"वाक्यार्थः सदृश्यो रैक्यारोपो निदर्शना,"

अर्थात् दो सदृश वाक्यार्थों का ऐक्य स्थापन होने पर 'निदर्शना' होती है। उदाहरण यह है—

यद्दातुः सौम्यता सेयं पूर्णेन्दोरकलङ्किता।*

यहाँ 'यत्' और 'तत्' शब्द के द्वारा दाता की सौम्यता और पूर्णेन्दु की अकलङ्किता में ऐक्य स्थापित किया गया है।

भूषण ने इसी लक्षण का पूर्ण भाव इस प्रकार प्रकट किया है—

"सदृश वाक्य युग अरथ को करिये एक अरोप।"

इसका उदाहरण भी उसी के अनुकूल निम्न लिखित है—

"मच्छहु कच्छ मैं कोल नृसिंह मैं
बावन मैं भनि भूषन जो है।

*चन्द्रलोक, पृष्ठ ५६

जो द्विज राम मैं जो रघुराज मैं
जोऽब कह्यौ बलरामहु को है।
बौद्ध मैं जो अरु जो कलकी महँ
विक्रम हूवे को आगे सुनो है।
साहस भूमि अधार सोई अब
श्री सरजा सिवराज में सो है।"

[शि० भू०, १४०

इस छन्द में मच्छ कच्छादि उपमानों का क्रमपूर्ण नियमानु-सार है, तथा "अरु जो कलकी महँ विक्रम हूवे को आगे सुनो है" कहकर भूषण ने इस पद्य में चौगुना चमत्कार भर दिया है। इस उदाहरण में ठीक चन्द्रालोक के 'यत्-यत्' की ही भाँति 'जो-सो' शब्दों से उपमेय उपमान का ऐक्यारोपण किया गया है, जिसका पर्यवसान उपमा में होता है। मम्मट ने लिखा है कि जहाँ अनेक उपमानों के साथ एक उपमेय का ऐक्यारोप हो, वहाँ माला रूपी 'निदर्शना' होती है। भूषण का उक्त दृष्टान्त माला रूपा निदर्शना का ही है। इस उदाहरण में द्विवाक्यता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव स्पष्ट है, जब कि विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण में इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है :—

"प्रयाणे तव राजेन्द्रः मुक्ता वैरि मृगी दृशाम्,
राजहंस गतिः पद्मवामाननेन शशि द्युतिः।*

*साहित्य दर्पण, दशमः परिच्छेदः, पृष्ठ १७४

इसमें द्विवाक्यता अत्यन्त अव्यक्त है। इस पर भी भूषण के उक्त छन्द में जहाँ स्पष्टतया दो वाक्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं, द्विवाक्यता न मानना सरासर अन्याय है।

तीसरा उदाहरण विरोध अलंकार का है। सम्पादक प्रवर का कहना है कि विरोध अलंकार अलग न होना चाहिए। उन्होंने भूषण की निम्नलिखित परिभाषा को भी भ्रामक बतलाया है।

'द्रव्य क्रिया गुण में जहाँ उपजत काज विरोध।'

[शि० भू०, २८२

साहित्यदर्पणकार ने इस 'विरोध' अलङ्कार की परिभाषा इस प्रकार दी है :—

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः ;
क्रिया क्रिया द्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः।
विरुद्ध मेव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः।*

भूषण का उदाहरण भी देखिये—

"श्री सरजा सिव तो जस सेतसों होत हैं बैरिन के मुँह कारे;
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लसे कुनबा नृप सारे।"

[शि० भू०, १८३

साहित्य दर्पण का उदाहरण भी लीजिये—

"तव विरहे मलय मरुद्दवानलः शशि रुचोऽपि सोष्माणः ;
हृदय मलिरुत मपि भिन्ते, नलिनीदल मपि निदाधरवि रस्याः ॥

---

* साहित्य दर्पण, दशमः परिच्छेदः, छन्द ६८

† साहित्य दर्पण, दशमः परिच्छेदः, पृष्ठ-२०४

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शिवराज भूषण और साहित्य दर्पण की परिभाषाएँ आपस में मिलती हुई हैं और उनके उदाहरण भी एक से ही हैं। अतः यह निश्चित है कि भूषण ने न तो विरोध अलंकार के मानने में भूल की है और न उनकी परिभाषा में ही कोई भ्रम दिखायी देता है। हाँ, साहित्य दर्पणकार ने विरोधालंकार के जो दस भेद माने हैं, वे भूषण ने नहीं लिये। उसके न मानने में कोई अनौचित्य भी नहीं है। फिर सम्पादक जी का कहना है कि यह विषमालंकार का भेद होना चाहिए, परन्तु विषम अलकार की परिभाषा ही इससे नितान्त भिन्न है। यथा—

"कहाँ बात यह कहँ वहै यों जहँ करत बखान ;
तहाँ विषम भूषन कहत भूषन सुकवि सुजान।"

[शि० भू०, २०६

इसका उदाहरण भूषण ने यह दिया है:—

"बापुरो ऐदिलशाह कहाँ
कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।"

[शि० भू०, २०७

चन्द्रालोककार ने भी विषमालङ्कार का प्रथम रूप इसी प्रकार व्यक्त किया है। जैसे—

क्वेयं शिरीष मृदङ्गी क्तावन्मदन ज्वरः।*

* चन्द्रालोकः, पृष्ठ १०५

परन्तु इसका दूसरा लक्षण और उदाहरण इससे नितान्त भिन्न है, इसलिए भूषण ने उसे विरोध माना है। यथा—

विरूप कार्यस्योत्पत्तिरपरं विषमं मतम्;
कीर्तिं प्रसूते धवलां श्यामा तव कृपाणिका*

चन्द्रालोक के इन दोनों भेदों में कोई साम्य नहीं है। अतः इसे भूषण का विरोध अलंकार मानना ही युक्तियुक्त है। इसमें भी भूषण की व्युत्पन्न मति का स्पष्ट दर्शन होता है। सम्पादक महोदय का इसमें आलंकारिकता न मानना भी भूल है। इसके लिए भूषण का उक्त उदाहरण ही पर्याप्त है। इन उदाहरणों से हम सहज ही भूषण की आलंकारिक योग्यता और उनके गम्भीर अध्ययन का अनुमान कर सकते हैं। उनके ऊपर थोपे गये आक्षेपों का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

भूषण की रचना में वैदिक भावना

आर्य साहित्य के बाद वैदिक भावना लुप्तप्राय हो गयी थी। यही कारण है कि भूषण के पहले हमें किसी भी कवि की रचना में उन भावनाओं का दर्शन नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वेदों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उनके द्वारा भगवान रामचन्द्र जी की स्तुति भी करायी है, परन्तु भूषण की रचना में उन भावनाओं का जैसा सहज, स्वाभाविक और उत्कृष्ट वर्णन मिलता है, वैसा अन्य कवियों की रचना में नहीं मिलता। भूषण

---

* चन्द्रालोकः पृष्ट १०५

ने वैदिक भावना को फिर से जाग्रत किया और वीर रस में रँग कर उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया था।

शिवराज भूषण के मंगलाचरण में वे लिखते हैं :—

विकट अपार भव पंथ के चले को स्रम,
हरन करन बिजना से ब्रम्ह ध्याइये।
यहि लोक परलोक सुफल करन कोक,—
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए।
अलि कुल कलित कपोल ध्यान ललित,
अनन्द रूप सरित में भूषण अन्हाइए।
पाप तरु भञ्जन विघन गढ़ गञ्जन,
जगत मन रंजन द्विरदमुख गाइये।

[शि० भू०, १

इस छन्द में गणेशरूप ब्रह्म की स्तुति की गयी है, जो अपार और भयावने संसार के मार्ग को सुरक्षित रखता है।

इस प्रार्थना द्वारा भूषण वैदिक मन्त्रों की तरह सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों भावों को व्यक्त करने वाली स्तुति करते हैं। इस स्तुति में ब्रह्म शब्द निराकार, सर्व व्यापक परमात्मा के लिए आया है। अध्यात्म भाव में जहाँ हृदय की शुद्धि, मन की प्रसन्नता और उत्साह आदि के लिए प्रार्थना की गयी है, वहाँ सांसारिक विजय की भी आकांक्षा दृष्टिगोचर होती है।

इसी ग्रन्थ में दूसरी प्रार्थना देवी की है। इसमें शिवाजी की आध्यात्मिक भावना को संसारव्यापी होने के लिए प्रार्थना की गयी है।

अब सूर्य की उपासना सम्बन्धी छन्द देखिये—

तरनि, जगत जलनिधि तरनि, जै जै आनन्द ओक;
कोक कोकनद सोक हर, लोक लोक आलोक।

[शि० भू०, ३

इस स्तुति का वैदिक सूर्योपासना से मिलान कीजिये—

चित्रं देवाना मुद गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षः सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

इन दोनों प्रार्थनाओं मे बहुत साम्य है। भूषण ने केवल कोक कोकनद की संसार से उपमा देकर उसे आलंकारिक रूप दे दिया है।

अब वैदिक प्रधान मंत्र गायत्री से भी इसी स्तुति का मिलान कीजिये।

"तत्सवितुर्व-रेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।"

इस मंत्र का भी पूरा भाव सूर्य की स्तुति मे प्रतिबिम्बित हो रहा है। इसका 'जै-जै' शब्द 'यो नः प्रचोदयात्' के भाव को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त कर कहा है।

इस प्रकार भूषण की रचना मे वैदिक भावनाएँ पूर्ण रूप से परिलक्षित होती हैं।

शिवराज भूषण अलंकार विषयक एक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के प्रथम उदाहरण में ही भूषण ने एक नयी भावना व्यक्त की है। वे उपमालंकार का उदाहरण देते हुए लिखते हैं:—

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हौं,
सरजा सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज कौं।

[शि० भू०, २४

इसमें शिवाजी की उपमा इन्द्र से और औरंगज़ेब की तुलना श्रीकृष्ण से की गयी है। कुछ सज्जनों ने यह आपत्ति की है कि 'औरंगज़ेब से श्रीकृष्ण की उपमा देना अनुचित है।' परन्तु वे इस बात को भूल जाते हैं कि वेद में इन्द्र का पद विष्णु से ऊँचा माना गया है, यद्यपि पुराणों में विष्णु को इन्द्र से ऊँचा पद दिया गया है। श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। अतः यहाँ पर इन्द्र को विष्णु से श्रेष्ठ दिखलाने के विचार से ही यह उपमा दी गयी है। इस प्रकार भूषण ने वैदिक मार्ग का ही अनुगमन किया है।

इस भाव को भूषण ने और भी अनेक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है। शिवराज भूषण के छन्द नम्बर १०३ में शिवाजी के पहाड़ी किलों का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

'इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातें,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसाइबे कौं,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है।'

यहाँ पर शिवाजी को इन्द्र के अनुज उपेन्द्र (विष्णु) का अवतार कहा गया है। इन्द्र पहाड़ों का शत्रु माना जाता है। शिवाजी द्वारा उनके रक्षणरूप फल की उत्प्रेक्षा की गयी है। इन्द्र और पहाड़ सम्बन्धी इसी भाव को व्यक्त करने वाला एक वेद मन्त्र, जिसमें इन्द्र की महत्ता प्रकट की गयी है, इस प्रकार है :—

युर्वतमिन्द्र पर्वता परोथुरोधायो नः प्रतन्यादपतं—
तमिद्धत वज्रेण तन्तमिद्धतम्।
दूरे चत्ताय छन्तसद्गहनं यदि नचत्।
अस्माकं शत्रून् परिशूर विश्वता दर्मोऽदर्षीष्ट विश्वतः।

गोस्वामीजी ने 'स्वान समान पाक रिपु रीती', आदि उपमाओं द्वारा इन्द्र को बहुत ही गहरे गड्ढे में गिराने का प्रयत्न किया था; भागवत में भी श्रीकृष्ण की तुलना में उसे कई बार नीचा दिखलाया गया है। भूषण ने पौराणिक भावना को हटा कर समाज को वैदिक मार्ग की ओर ले जाने का उद्योग किया है। वैदिक मर्यादा को सुरक्षित रखने के विचार से शिवराज भूषण में विष्णु को इन्द्र का छोटा भाई कहा गया है। इसी प्रकार शिवराज भूषण के छन्द नं० ६६ में शिवाजी को इन्द्र मानकर उनकी प्रशंसा इस प्रकार की गयी है :—

किरयान बज्र सों बिपच्छ करिबे के डर,
मानि कैं कितेक आये सरन की गैल हैं।

मघवा मही में तेजवान शिवराज वीर,
कोट कारि सकल सपच्छ किये सैल हैं।

इस छन्द में शिवाजी को इन्द्र मान कर पहाड़ों का उनकी शरण में जाना वर्णित है। इसी से उन्होंने पहाड़ों पर किले बनवाकर मानो उन्हें फिर 'सपच्छ' कर दिया है। इस तरह भूषण ने यहाँ भी उसी वैदिक भावना को सुरक्षित रखने का उद्योग किया है।

भूषण युद्ध का वर्णन करते हुए शिवराज भूषण के ३३३वें छन्द में लिखते हैं:—

अजौं रवि मंडल रुहेलन की राह है।

प्रत्येक पुण्यात्मा शरीर छोड़ने के पश्चात् सूर्य मंडल में जाता है, यह वैदिक सिद्धान्त है। इसके विरुद्ध पुराणों में मृतात्माओं के लिए स्वर्ग और नरक की स्थापना की गयी है। अतः निश्चित् है कि भूषण उक्त कथन द्वारा वैदिक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन कर रहे हैं।

भूषण ने शिवराज भूषण के छन्द नं० ५ और ८ में सरजा, सीसौदिया, भौंसिला और खुमान शब्दों की जो निरुक्ति की है, वह वैदिक ढङ्ग पर ही की गयी है। इस प्रकार वे जनता के समक्ष वैदिक भावों को रखना चाहते थे।

वैदिक उपासना

भूषण ने सामयिक परिस्थिति का अनुशीलन कर निर्गुण और सगुण दोनों उपासनाओं का आधार लिया है। वस्तुतः वैदिक

उपासना निर्गुणात्मक होने के लिए ही आदेश करती है। भूषण-कालीन समाज सगुणोपासक था; परन्तु उन्होंने किसी विशेष उपासना को न मानकर दोनों का ही प्रतिपादन किया है। इस उपासना में मुसलमानों की विचार-धारा को भी स्वीकार करके, उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों का स्थायी मेल स्थापित करने का भी प्रयत्न किया है। भूषण का यह आयोजन अत्यन्त स्तुत्य और उनकी राजनीतिक बुद्धिमत्ता का परिचायक है। वे कहते हैं :—

चाहत निर्गुण सगुण को, ज्ञानवन्त की वान ;
प्रकट करत निर्गुण सगुण शिवा निवाजी दान।

[शि० भू०, १४३

भूषण की यह विचार-धारा उन महाशयों के लिए स्पष्ट उत्तर है जो भूषण पर जातिगत द्वेष फैलाने का दोष लगाते हैं। उनकी रचना में ऐसे अनेकों वर्णन हैं जिनमें जातिगत द्वेष को दूर करने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। उस में मूर्ति-पूजा तथा देवी देवताओं के लिए कोई उच्च स्थान नहीं है। अनेकों स्थलों पर वे इन्हें उपेक्षणीय कहते हैं। यथा—

देवल गिरावते फिरावते निशान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबी गये लबकी।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
आपनी ही बार सब मारि गये दबकी।

(शि० बा०, १२

शिवा बावनी छन्द न० ४३ में भी यही भाव व्यक्त किया गया है। उसी के ४४वें छन्द में उन्होंने लिखा है :—

भूषण भनत भाग्यौ कासीपति विस्वनाथ
और कौन गिनती में भूली गति भव की।
चारो वर्ण धर्म छोड़ि कलमा निवाज पढ़ि,
सिवाजी न होतौ तो सुनति होति सब की।

भूषण की रचना से इस प्रकार के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। इन छन्दों से स्पष्ट विदित होता है कि गौरा, गनपति, देवी, देवता, यहाँ तक कि काशीपति बिश्वनाथ तक में उनकी श्रद्धा अधिक नहीं प्रतीत होती। वे उन्हें शक्तिहीन समझते थे। उनकी यह भावना वैदिक विचारों के प्रति आकर्षण स्वरूप तथा सामयिक परिस्थितियों के कारण ही बनी थी। सम्भव है, इस सम्बन्ध में वे दक्षिण में निवास करने के समय पेशवा बाजीराव तथा वहाँ के अन्य विद्वानों-पडितों से विचार-विनियम भी करते रहे हों, क्योंकि बाजीराव पेशवा की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं:—

उलटत पलटत गिरत झुकत उझकत,
शेषफन वेद पाठिन के हाथ से।*

इससे स्पष्ट है कि दक्षिण के ब्राह्मणों के विचार भी भूषण के समान ही थे।

भूषण को गो-भक्ति का विशेष महत्त्व दिखलाना अभीष्ट न था। उनका प्रधान लक्ष्य था अहितकर रूढ़ियों का उत्पाटन और

---

*भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द ३२, पृ० ११६

हितकर भावनाओं का पुनर्जीवन। औरंगजेब तथा अन्य धर्मान्ध आततायियों ने गाय का आश्रय लेकर धर्मभीरु हिन्दुओं को अनेक बार पददलित किया था। अतः भूषण ने इस भावना को नष्ट करने का प्रयत्न निम्नलिखित छन्द द्वारा किया था।

सिंह सिवा के सुबीरन सों,
गो अमीर न बाचि गुनीजन घोष।

शि० भू०, ७७

भूषण की विचार-धारा में अधोगामिनी भावनाओं को नाम-मात्र का भी स्थान नहीं था। उनकी दृष्टि सदैव उत्कर्ष की ओर रहती थी, इसलिए उन्होंने संकुचित विचार-शृंखलाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया था और वे निर्भीक होकर अपने मत के समर्थन एवम प्रचार में तन, मन और धन से लग गये थे; इसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने अपने जीवन में ही देश की दशा कुछ की कुछ कर दी थी। वैदिक भावना का यह उत्कृष्ट भूषण की रचना में बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादित हुआ है। इस प्रकार राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति भूषण के मस्तिष्क की अभूतपूर्व उपज थी।

वीर रस का विकास और भूषण

पहले कहा जा चुका है कि भारतीय समाज का विकास, वैदिक सभ्यता से हुआ था। इसी का आश्रय पाकर आर्य संस्कृति ने अपना उत्कृष्ट रूप संसार के सम्मुख उपस्थित किया था। इस वैदिक संस्कृति का मेरुदंड वीररस ही था, जिसका

साहि के सपूत पूत वीर सिवराज सिंह,
केते गढ़धारी किये वन बनचारी से ;
भूषन बखाने केते दीन्हें बन्दीखाने, सेख
सय्यद हजारी गहैं रैयत बजारी से,
महता से मुगल, महाजन से महाराज,
डाँड़ि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से।
[शि० बा०, ३४

तुलसीदास जी ने हनुमान जी की प्रशंसा की है और भूषण ने शिवाजी की। तुलसी के छन्द में असम्भूत शक्ति और देवत्व-भावना के दर्शन होते है। परन्तु भूषण की रचना में वहीं भी न तो असम्भावना प्रतीत होती है और न दैवी शक्ति समन्वित अलौकिकता ही पायी जाती है। पूरा छन्द स्वाभाविकता से आप्लावित है। वैसे दोनों ही छन्द ओज और प्रसाद गुण युक्त हैं और उनमें वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

भूषण और मतिराम की रचना में भी कुछ साम्यावस्था दिखलायी पड़ती है। मतिराम का शृंगार रस का दोहा यों है।

अली चली नवलाहि लै, पिय पै साजि सिगार ;
ज्यों मतंग अड़दार कौं, लिये जात गड़दार।

भूषण उसी भाव को वीर रस में यों व्यक्त करते हैं :—

'दाव दार निरखि रिसानौ दीह दल राय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।'

उपर्युक्त दोनों छन्दों में मतवाले हाथी को पुचकार कर ले जाने की उपमा दी गयी है। प्रथम छन्द में मुग्धा नायिका है; दूसरे में वीर शिवाजी की प्रशंसा की गयी है। दोनों वर्णन उत्तम हैं, परन्तु यह उपमा वीर रस के ही अधिक उपयुक्त है। औरंगजेब के दरबार में शिवाजी जैसे वीर योद्धा के जाने का वर्णन इससे अधिक ओजपूर्ण हो ही नहीं सकता।

प्रथम मतिराम ने अपने 'ललित ललाम' में लिखा है :—

मूँछनि सौं राव मुख लाल रंग देखि मुख,
औरन कौ मूँछन बिना ही स्याम रंग भौ।

उसी भाव को 'शिवराज भूषण' में भूषण ने इस प्रकार प्रकट किया है :—

तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि, भयो
स्याह मुख औरंग सिवाह मुख पियरें।

इन दोनों छन्दांशों में भूषण की रचना अधिक ओजस्विनी है। उसमें रौद्र रस का पूर्ण प्रस्फुरण है। मतिराम के छन्द में शत्रुओं पर शिवाजी का उतना प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता जितना भूषण के छन्द में। इन तुलनाओं से यह भलीभाँति प्रकट हो जाता है कि वीररस-वर्णन में भूषण के सामने कोई खड़ा नहीं हो सकता।

शिवराज-भूषण में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव

भूषण ने अपना ग्रन्थ शिवराज-भूषण सितारा में ही बैठ कर लिखा था। ग्रन्थ निर्माण में सहायक ऐतिहासिक घटनाएँ

जानने के लिए उन्होंने महाराष्ट्र साहित्य का अध्ययन भी किया था, इसीलिए वहाँ के साहित्य की ध्वनि भूषण में यत्र-तत्र सुन पड़ती है और इसी कारण मराठी भाषा के शब्द भी उनकी रचना में पर्याप्त रूप में पाये जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से इस स्थान पर वहाँ के कुछ साहित्यिकों के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावों का दिग्दर्शन करना अनुपयुक्त न होगा।

जयराम कवि शिवाजी के समकालीन थे। उनका 'राधा माधव विलास चम्पू' प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसमें १०-१२ भाषाओं का प्रयोग किया गया है। उसकी रचना गद्य और पद्य दोनों ही में हुई है। उसका एक छन्द यह है :—

साहि खुमान* कौ दान कहा बिधि,
कैसे कियो निधि मोल लियो है!
कारन याको कह्यौ करतार ने,
सीसोदियें कुल सीसो ईस दियो है।

अब भूषण कृत 'सीसौदिया' वंश की निरुक्ति पर भी विचार कीजिये। अपने शिवराज-भूषण' में वे लिखते हैं :—

महावीर ता वंश में, भयो एक अवनीस;
लियो बिरद 'सीसोदिया', दियो ईस को सीस।

इन दोनों छन्दों में अपूर्व भाव साम्य है! दोनों की निरुक्ति भी एक सी ही है। परन्तु जयराम की निरुक्ति का ढंग कुछ

---

* माधुरी, वर्ष ८, खंड १, संख्या ३, आश्विन सं० १९८६, पृ० २९१

उथला तथा उखड़ा हुआ है और भूषण की निरुक्ति तो सटीक बैठती है।

'शिव भारत' नामक संस्कृत ग्रन्थ के कुछ श्लोक इस प्रकार हैं :—

तं वीर ग्रन्थ सेनान्यं स विधाय महामनाः। १७
अन्यानमूंश्च मूनाथाँस्तत्साहाय्ये समादिशत्। ५०
अम्बरः शम्बर समः प्रतापीयाकुतो युतः। ५१
तथैवाँ कुश खानोऽपि निरंकुश गज क्रमः। ५२

भूषण के 'शिवराज भूषण' में इसी भाव का एक कवित्त यह है: —

"साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ कहा,
मगदल अफजलै पंजा बल पटक्यौ;
ता बिगिरि है करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यौ।
[शि० भू०, १२

इन दोनों रचनाओं में भाव-साम्यता होते हुए भी भूषण की कविता अधिक भावपूर्ण है। "आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो" में जो आलंकारिक सौन्दर्य है, वह शिवभारत की रचना में नहीं दिखलायी देता।

शिवराज भूषण के २५९वें छन्द में भूषण लिखते हैं।

गौर गरबीले अरबीले राठौर गय्यौ,
लौहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष ते।

यही भाव 'शिवभारत' नामक संस्कृत ग्रन्थ में इस प्रकार प्रकट किया गया है :—

सिंह लोहं महात्तं च प्रबलं च शिलोच्चयम्;
पुरन्दरं गिरिं तद्वत् पुरीं चक्रावतीमपि।

उपर्युक्त छन्दों में सिंहगढ़ और लौहगढ़ दोनों गढ़ों का एक साथ वर्णन किया गया है, यद्यपि वे भिन्न-भिन्न समय में जीते गये थे।

'जेधे* शकावली" में लिखा है कि ज्येष्ठ ४ शुक्रवार को रस्सियों की सीढ़ियों द्वारा चढ़ कर लौहगढ़ जीता गया था। 'शिव दिग्विजय' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह किला शिवाजी के सरदार "माणको जी दहातोड़े" ने विजय किया था और सिंहगढ़ का क़िला उदयभान राठौर की मातहती में था, जिसे "ताना जी मौलसरे" ने सर किया था।

ऊपर वर्णित अवतरणों से स्पष्ट है कि शिवराज भूषण के अनेक छन्दों में महाराष्ट्र ग्रन्थों के छन्दों की ध्वनि गूँजती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि भूषण ने अपना ग्रन्थ रचने से पूर्व इन ग्रन्थों को अवश्य देखा होगा।

भूषण की रचना में मौलिकता

हिन्दी के प्राचीन साहित्य में मौलिक रचनाओं का प्रायः अभाव है। विद्वानों का विचार था कि सूरदास की कविता में

---

* माधुरी वर्ष ८, खंड १, संख्या ४, कार्तिक संवत् १९८६ पृ० ७१०

मौलिक भावनाओं का अधिक समावेश हुआ है; परन्तु गम्भी-रता-पूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि भूषण की रचना में सूर से भी अधिक मौलिकता है। 'सूर सागर' में जहाँ मौलिकता की मात्रा अधिक पायी जाती है, वहाँ उसमें पिष्टपेषण भी कम नहीं है। एक ही विचार को इतनी बार दुहराया गया है कि उसकी सुन्दरता न्यून पड़ जाती है। भूषण की यह विशेषता है कि उनकी रचना में जहाँ मौलिकता सबसे अधिक दिखलायी देती है वहाँ उसमें पिष्टपेषण नाम को भी नहीं है।

'शिवराज भूषण' की प्रारम्भिक गणेश-वन्दना में ही हमें भूषण की मौलिकता का पूरा आभास मिल जाता है।

विकट अपार भव पंथ के चले को श्रम,
हरन करन बिजना से ब्रह्म ध्याइये;
पाप तरु भंजन विघन गढ़ गंजन,
जगत मन-रंजन द्विरद मुख गाइये।

[शि० भू०, १

एक ओर तो यह प्रार्थना वीर रस के अनुरूप है, परन्तु साथ ही साथ इसमें मौलिक भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। गणेशजी को जहाँ पापनाशक कहा है, वहाँ युद्ध में हाथियों द्वारा गढ़ का दरवाजा तोड़े जाने की ओर भी सकेत किया है। इस प्रकार हाथी के स्वभाव का चित्रण कर मानव प्रकृति का सामञ्जस्य बड़े अनोखे ढँग से किया गया है। 'बिजना से

ब्रह्म' कह कर आध्यात्मिकता और सांसारिकता का मिश्रण भी खूब किया गया है।

'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ३ में सूर्य की उपासना का ढँग भी देखने योग्य है: —

तरनि जगत जलनिधि तरनि, जै जै आनन्द ओक;
कोक कोकनद सोक हर, लोक लोक आलोक।

इसमें सूर्य की नाव से तुलना की गयी है। दूसरी पंक्ति में वैदिक भावना का कितना अच्छा पुट दिया गया है!

भूषण ने राजवंश वर्णन में सरजा, सीसौदिया, भौंसिला और खुमान की निरुक्ति वैदिक ढँग पर ही की है। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

ताते सरजा विरद भो सोभित सिंह समान;
रन भूसिला सुभौंसिला आयुष्मान खुमान।

[शि० भू०, ८

महावीर ता बंस मैं भयो एक अवनीस;
लियो विरद सीसौदिया दियौ ईस कौं सीस।

[शि० बा०, ९

इन निरुक्तियों में नवीनता के साथ-साथ अनूठापन भी है। शिवाजी के लिए सीसोदिया की निरुक्ति ऐतिहासिकता के विरुद्ध होते हुए भी उत्तेजक और महत्वपूर्ण है।

शिवाजी के प्रसिद्ध क़िले रायगढ़ का वर्णन करते हुए भूषण लिखते हैं:—

जामधि तीनहुँ लोक की दीपति,
ऐसो बड़ो गढ़राज विराजै,
बारि पताल मिमाची मही,
अमरावति की छवि ऊपर छाजै;

[शि० भू०, १९

इस छन्द मे रायगढ़ को तीनों लोकों में उत्तम बतलाते हुए उसकी 'माची' का उल्लेख किया है। रायगढ़ के क़िले में तीन माची होने का उल्लेख यदुनाथ सरकार ने अपने 'शिवा जी' नामक ग्रन्थ में भी किया है। फिर भूषण कहते हैं :—

पावक तुल्य अमीतन को भयो,
मीतन को भयो धाम सुधा को,
अनंद भौ गहिरो समुदै कुमुदावलि,
तारन को बहुधा को।

[शि० भू०, ३७

यहाँ शिवाजी को अग्नि और चन्द्र के समान कहा गया है। वे शत्रु को अग्नि की भाँति दुखदायी हैं, परन्तु मित्रों (समुद्र, कुमुद और तारा) को समान रूप से सुखदायक है। कैसी अनोखी उपमा और मनोहारिणी शब्द-व्यञ्जना है।

अब प्रतीपालंकार का यह उदाहरण भी देखिये :—

शिव प्रताप तव तरनि सम, अरि पानिप हर मूल ;
गरब करत केहि हेतु है, बड़वानल तो तूल।

[शि० भू०, ४४

यहाँ सूर्य की उपमा शत्रु के पानिप हरण के लिए देना वीर रस के उपयुक्त ही है।

भूषण ने शिवाजी को 'इन्द्र जिमि जम्भ पर.........सेर शिवराज हैं', नामक छन्द में शिवाजी के लिए ११ उपमाएँ दी हैं। इनमें कई नवीन हैं।

छन्द नं० ६१ में कलियुग और समुद्र का रूपक भी अवलोकनीय है।

कलियुग जलधि अपार उद्ध अधरम्म उर्म्मिमय,
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ जच्छ चय;
नृपति नदी नद वृन्द होत जाको मिलि नीरस,
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस।
हिन्दुआन पुन्य गाहक बनिक तासु निबाहक साहि सुव ;
बर बादवान किरवान धरि, जस जहाज सिवराज तुव।
[शि० भू०, ६१

इस छन्द में संसार रूपी समुद्र में शिवराज का यश रूपी जहाज भारत का निर्वाह कर सकता है। इसमें बादवान को किरवान बतला कर वीरत्व की भावना भी प्रस्फुटित कर दी गयी है।

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के छन्द ६३ में

आकुत महाउत सो आँकुस लै सटक्यौ,

कह कर ऐतिहासिक भावना को कैसी सुन्दरता से साहित्यिक रूप दे दिया है। बीजापुर के सेनापति अफजल खाँ के साथ

याकूत खाँ और अंकुशखाँ भी शिवाजी को पकड़ने गये थे। अन्त में अफजल खाँ के मारे जाने पर ये दोनों सरदार बीजापुर को भाग गये थे। इस छन्द में अफजल को हाथी की उपमा देकर अकुश का सामञ्जस्य बड़ी ही सुन्दरता से किया गया है।

किरवान बज्र सों विपच्छ करिवे के डर,
आनि कै कितेक गहे सरन की गैल हैं;
मघवा मही में तेजवान सिवराज बीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं।

[शि० भू०, ११

उपर्युक्त छन्द में इन्द्र ने पहाड़ों को पच्छहीन कर दिया था। अब इन्द्र के छोटे भाई विष्णु ने शिवा जी के अवतार रूप में पहाड़ी क़िले बनाकर फिर उन्हें सपच्छ कर दिया है। कैसी अनोखी उपमा है। वीर रस की उद्भावना इससे उत्कृष्ट रूप में कोई क्या कर सकता है।

इसी प्रकार के उदाहरणों से भूषण की सम्पूर्ण रचना ओत-प्रोत है। कहीं से भी कुछ छन्दों को पढ़ने पर हम उसका सरलतया आभास पा सकते हैं। 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ६८, ७२, ७५, ७७, ७९, ८१, ८३, ९०, ९६, ९९, १०१, १०२, १०३, १०४, १११, १२४, १३२, १४०, १५५, १६१ इत्यादि तथा 'शिवाबावनी,' 'छत्रसाल दशक' और फुटकर रचनाओं के अधिकांश भाग को देखने पर भूषण की मौलिकता सहज ही सिद्ध हो जाती है।

७—समाज-सुधार की योजना

विवाह का आदर्श

भूषण ने राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य किया है वह तो सर्व-साधारण को विदित है, परन्तु उन्होंने समाज-सुधार के कार्य में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं, उनकी ओर हिन्दी जगत् का ध्यान अभी आकर्षित नहीं हुआ है। यहाँ पर उसी विषय में विचार करना अभीष्ट है।

भूषण को ठीक-ठीक समझने के लिए इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि तत्कालीन परिस्थिति में भूषण का स्थान बहुत ऊँचा था। उस समय केवल हिन्दू समाज ही नहीं, वरन् मुसलमान समुदाय भी उनकी कृपा की आकाँक्षा रखता था। उन्हें अपने दरबार में बुलाने के लिए राजा, महाराजा और बादशाह तक विशेष प्रयत्नशील रहते थे और उनके पहुँचने पर गौरव का अनुभव करते थे। उनकी सामाजिक भावना को वास्तविक रूप में समझने के लिए उन्हीं के शब्दों में अकबर के दो मन्त्रियों महाराजा मानसिंह और राजा बीरबल की प्रशंसा का वर्णन करना असंगत न होगा।

निम्नलिखित छन्द में जयपुर नरेश महाराजा मानसिंह की प्रशंसा सवाई जयसिंह के सामने उनका पूर्वज मान कर की गयी है।

अकबर पायो भगवन्त के तनै सौं मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों,
भूषन त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,
साहिजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों;
अब औरंगजेब पायो रामसिंह जू सों,
औरौ दिन-दिन पैहैं कूरम के माने सों,
केते राजा राय मान पावें पातसाहन सों,
पावैं पातसाह मान-मान के घराने सों ।*

इस छन्द को कुछ लोगों ने जयपुर नरेश रामसिंह की प्रशंसा में माना है, परन्तु वास्तव में यह छन्द महाराजा मानसिंह की प्रशंसा में कहा गया है। इसीलिए आदि और अन्त में उन्हीं का उल्लेख है। दूसरों को तो उनका वंशज होने से महत्व दिया गया है। 'मान के घराने सों'. कहकर इस बात को बहुत ही स्पष्ट कर दिया गया है। मानसिंह का अकबर से विशेष सम्बन्ध था। भूषण भी मानसिंह की नीति को प्रशंसनीय समझते थे और हिन्दू मुसलमानों के मेल की भावना को दृढ़ीभूत करके समाज सुधार को आगे बढ़ाना चाहते थे। महाराजा मानसिंह मुसलमानों से वैवाहिक सम्बन्ध भी कर चुके थे, जिसके कारण उन्हें सामाजिक भर्त्सना भी सहनी पड़ी थी। परन्तु वे सतत अपने उद्योग में लगे रहे। भूषण ने इसी भावना द्वारा सवाई

---

*भू० ग्रन्थावली, फुटकर छंद २४

जयसिंह को उसी साँचे में ढालने का प्रयत्न किया था और उनके पूर्वजों की महत्ता प्रकट करते हुए उन्हें उसी प्रणाली पर चलने का उपदेश दिया था।

राजपूताने के अन्य अनेक राजाओं ने महाराजा मानसिंह की इस प्रणाली का पूर्णतया अनुकरण किया था। केवल चित्तौड़-नरेश महाराणा प्रतापसिंह के विरोध के कारण सुधार का वह कार्य वहीं का वहीं अवरुद्ध होकर रह गया। राणा प्रताप के तप, त्याग और बलिदान की तीव्र धारा में भारतीय समाज को उस सुधार की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला जिसे हमारे राष्ट्रीय महाकवि ने पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया था। उन्हीं के आदेशानुसार जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने दो बड़ी-बड़ी सभाएँ करवायी थीं जिनमें उक्त प्रकार के निर्णय-स्वरूप विद्वानों द्वारा दो व्यवस्थाएँ बनवायी गयी थीं। सवाई जयसिंह ने भूषण के कहने से ही उत्तर भारत के नरेशों का नेतृत्व ग्रहण किया था, जिसमे स्वराज्य-भावना का उद्योग निहित था। इसका उल्लेख सावरकर महोदय ने अपनी 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक मे स्पष्ट रीति से किया है।

अकबर के दूसरे मन्त्री राजा बीरबल की प्रशंसा भूषण ने अपने 'शिवराज-भूषण' नामक ग्रन्थ के प्रारम्भ में इस प्रकार की है:—

बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप ;
देव बिहारीश्वर तहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप।

इस छन्द में बीरबल की कवि और राजा के रूप में प्रशंसा की गयी है। उन्होंने बिहारीश्वर का मन्दिर कानपुर-हमीरपुर रोड पर रांजेती गाँव में बनवाया था। बीरबल ने अकबर का 'दीन इलाही' मजहब स्वीकार किया था।

इन्हीं दोनों मन्त्रियों की सहायता से अकबर ने सिद्धान्त रूप से हिन्दू-मुसलमानों के मेल की स्थापना की थी और दोनों को वैवाहिक सूत्र में भी आबद्ध कर लिया था। भूषण ने भी इस सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन करके उसे और आगे बढ़ाने का उद्योग किया था। उन्होंने मुसलमानों को हिन्दू लड़कियाँ देना ही उचित नहीं समझा वरन् मुसलमान लड़कियों से हिन्दू लड़कों के विवाह सम्बन्ध को भी हिन्दू समाज में प्रचलित कराने का भी उद्योग किया।

भूषण ने अन्य दो प्रसिद्ध विवाहों में भी हाथ बँटाया था। उनमें एक तो भगवन्तराय खीची के लड़के का था और दूसरा बाजीराव पेशवा का। जब भगवन्तराय खीची ने कोड़ा* जहानाबाद के मुसलमान सूबेदार को मारकर उसका राज्य छीन लिया था, उस समय उक्त सूबेदार की लड़की खीची के हाथ पड़ गयी थी। तब उसने अपने लड़के शेरसिंह के साथ उस लड़की का विवाह कर दिया था। भगवन्तराय खीची के दरबार में भूषण का काफी सम्मान था, अतः इस विवाह के आयोजन में भूषण का विशेष हाथ अवश्य रहा होगा।

* हिन्दी पाँडुलिपि नं० १२१ का खोज रिपोर्ट, परिशिष्ट २,

क्योंकि उन्हीं के हृदय की यह वैदिक उद्‌भावना समाज-सुधार के रूप में प्रस्फुटित हुई थी और वे ही इसके प्रवर्तक थे। भूषण के हृदय में खीची का जो सम्मान था, वह उन के उन छन्दों से भलीभाँति व्यक्त होता है जो उन्होंने उसके निधन पर कहे थे।

बाजीराव पेशवा ने मुसलमान लड़की मस्तानी से ब्राह्मण होते हुए भी विवाह किया था। इस विवाह में भी भूषण का पूरा हाथ था, और वर-कन्या दोनों पक्ष उनके आश्रय-दाता थे।

महाराजा छत्रसाल के प्रसिद्ध गुरु स्वामी प्राणनाथ के भी विचार भूषण से मिलते थे। उन्होंने 'कुलजय' (अजीर रास) नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें हिन्दू मुसलमानों के मिश्रित भावों को एकरूपता देते हुए विवेचना की गयी है और कृष्ण तथा मोहम्मद को समान रूप में चित्रित किया गया है। यह पुस्तक अमीनुद्दौला पबलिक लाइब्रेरी केसरबाग, लखनऊ में हस्तलिखित रूप में सुरक्षित है।

ये घटनाएँ तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। साथ ही भूषण की कार्य-शैली का भी भलीभाँति दिग्दर्शन करा देती हैं।

इस अवसर पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि बाजीराव पेशवा और मस्तानी के विवाह से छत्रपति शाहू भी सहमत थे, क्योंकि वे २७ वर्ष की अवस्था तक औरंगजेब की

क़ैद में रहकर मुसलमानी संस्कृति के भी अभ्यस्त हो चुके थे और उन पर हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था उन पर महाकवि भूषण के विचारों का भी अवश्य प्रभाव पड़ा होगा। महाकवि भूषण ने परोक्ष रीति से इस प्रकार के विवाहों का अपनी रचना द्वारा भी समर्थन किया है। यथा

भेजे लिखि लगन शुभ गनिक निजाम वेग,
इतै गुजरात उतै गंग ज्यों पतारा* की,
एक जस लेत अरि फेरा फिर गढ़ हू कौं,
खांड नवखंड दिए दान ज्योंऽब तारा की;
ऐसे ब्याह करत विकट साहू साहन सौं,
हद हिन्दुआन जैसे तुरक ततारा की,
आवत बरात सजे ज्वान देस दच्छिन के,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारा की।

इसी प्रकार के और भी कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस प्रकार भूषण ने प्राचीन पद्धति का अनुगमन कर समाज-संशोधन का महान कार्य प्रारम्भ किया था। स्थायी मेल के प्रतिपादन करने वाले ऐसे महानुभाव को यदि कोई व्यक्ति समाजद्वेषी कहता है तो फिर उसकी बुद्धि की बलिहारी है।

---

* शि० भू०, फुटकर छन्द, ३० पृ० ११८

वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी सुधार

यद्यपि भूषण का प्रधान लक्ष्य देश का राष्ट्रीयकरण ही था, परन्तु वे समाज-संशोधन के भी प्रबल पक्षपाती थे। उनकी बाहरी कार्यवाहियों से हम देख चुके हैं कि वे समाज-सुधार में हिन्दू-मुसलमानों के एकीकरण के लिए वैवाहिक सम्बन्ध तक के पक्षपाती थे। अब उनके साहित्य से अवलोकन करना है कि उसमें समाज-संशोधन की सामग्री कहाँ तक प्रस्तुत है।

भूषण ग्रन्थावली में कहीं पर भी स्त्रियों अथवा शूद्रों की निन्दा की चर्चा नहीं है और न उनकी भर्त्सना ही की गयी है। वरन् स्त्री-जाति की इज्जत और मर्यादा-रक्षण का उनके मन में सदैव ध्यान रहता था। वे कहते हैं :—

> हिन्दुआन द्रुपदी की इज्जति बचैवे काज,
>
> झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान की।
>
> [शि० भू०, ३२१

इसमें स्त्री की 'इज्जत' की रक्षा के लिए विराट नगर के बाहर भीम द्वारा कीचक-बध का संकेत किया गया है। इससे स्पष्ट है कि वे स्त्रियों की मर्यादा को कितना महत्त्व देते थे। शिवराज-भूषण ने आरम्भ में देवी की स्तुति स्त्री-जाति के प्रति किये गये आदर की परिचायका है।

हाँ, वेश्याओं को वे अवश्य घृणा की दृष्टि से देखते थे। क्योंकि वे स्वयम् 'शिवराज भूषण' में लिखते हैं :—

दारी गनिका समान सूबेदारी दिल्ली दल की।

[शि० भू०, १६६

इससे ज्ञात होता है कि गनिका की भर्त्सना उनके घृणित कर्म के कारण ही की गयी है।

कुछ आक्षेपकों का कथन है कि भूषण ने शत्रु-स्त्रियों के भागने और भयभीत होने का उल्लेख कर स्त्री-जाति का अपमान किया है। परन्तु यह उनकी भूल है। युद्ध के अन्त में विजित शत्रु-स्त्रियों का भय के मारे भागना स्वाभाविक चित्रण है। यदि यह न होता तो वीररस का वर्णन अधूरा होता और अस्वाभाविकता होती। परन्तु भूषण ने कहीं पर भी उनके प्रति घृणा के भाव व्यक्त नहीं किये और न उनके प्रति अत्याचार, दुराचारादि घृणित भावों का ही समावेश किया है। शिवाजी ने सदैव स्त्री-जाति की पवित्रता को स्थिर रक्खा था। हाँ, इससे एक बात अवश्य प्रतीत होती है कि औरंगजेब की सेना के लोग उक्त प्रकार के अत्याचार के आदी थे, इसलिए उन्हें स्वयम् ध्यान रहता था कि उनके साथ भी वैसा ही अत्याचार होगा जैसा वे दूसरों के साथ करते थे। इसलिए उनकी औरतें भागती फिरती थीं।

भूषण के इष्टदेव छत्रपति शिवाजी छुआछूत आदि को त्याज्य समझते थे और हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान भाव से प्रेम करते थे। जब उनके दामाद को औरंगजेब ने मुसलमान बना लिया तो उन्होंने उसे फिर ग्रहण कर लिया और अपनी जाति में सम्मिलित कर लिया था। शिवाजी एक मुसलमान फकीर बाबा

याकूत कैलोसी के परम भक्त थे। उनका प्राइवेट सेक्रेटरी काजी हैदर मुसलमान ही था। वे मन्दिर और मसजिद दोनों का समान भाव से आदर करते थे। उनके विषय में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ खाफी खाँ लिखता है :—

He made it a rule that whenever his followers went plundering, they should do no harm to the mosques, the book of God or the women of any one. Whenever a copy of the sacred Quran came into his hands, he treated it with respect and gave it to some of his Musalman followers.

इस बात का समर्थन और भी कई मुसलमान लेखकों ने किया है। बशीरुद्दीन अहमद ने 'वाक़ियाते मुमलिकात बीजापुरी' में भी इसी बात का उल्लेख किया है। इन्हीं सब गुणों पर मुग्ध होकर भूषण ने आदर्श रूप में शिवाजी को अपना इष्टदेव माना था और उन्हें विष्णु के अवतार तथा राम-कृष्ण के रूप में प्रतिपादित किया था।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि भूषण के सामाजिक सिद्धान्त बहुत उच्च थे और उदारता की भित्ति पर निर्धारित किये गये थे।

फिर भूषण 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० २६७ में लिखते हैं—

भूलिगे भोज से बिक्रम से,
औ भई बलि बेनु की कीरति फीकी।

राजा भोज और विक्रमादित्य विद्वानों और कवियों का आदर करते थे। साथ ही विक्रम ने शकों को हराया था, अतः शिवाजी में भी इन्हीं गुणों का आरोप कर उनकी विक्रम से तुलना की गयी है। राजा बलि राक्षस होने पर भी उत्कृष्ट राजा था। उसकी दानवीरता और उदारता जगतप्रसिद्ध थी। अतः उसे आदरणीय कहा गया है। वेनु को पुराणों में अत्यन्त उद्दंड प्रकृति का प्रबल प्रतापी राजा कहा गया है। वह ईश्वर को भी नहीं मानता था। फिर भी उससे तुलना करके भूषण ने शिवाजी को साम्प्रदायिकता और संकुचित सामाजिकता से भिन्न ठहराया है। इन उदाहरणों से हम भूषण की सामाजिक प्रणाली का अनुमान कर सकते हैं।

वे फिर 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ३४३ में शिवाजी की 'जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो', कह कर तुलना करते हैं।

जगदेव बड़ा वीर और युद्धप्रिय साहसी व्यक्ति था। जनक मिथिला के बड़े ज्ञानी राजा थे। जजाति बड़े सुधारक राजा थे। उन्होंने ब्राह्मण-कन्या देवयानी से अपना विवाह किया था। अम्बरीष भी बड़े सदाचारी, धर्मात्मा और तपस्वी राजा थे और अपने नियमों पर सदैव अटल रहते थे। उन्होंने दुर्वासा ऋषि के शाप की भी अवहेलना की थी, परन्तु अपने धार्मिक नियमों का कभी उल्लंघन नहीं किया।

इस प्रकार वीर जगदेव, ज्ञानी जनक, समाज-सुधारक जजाति और धर्मरत अम्बरीष के समान शिवाजी को बतलाकर इन चारों गुणों का उनमें समारोप किया गया है।

इन रचनाओं से हम भूषण के सामाजिक सुधारों और अन्तर्जातीय विवाह तक के पक्षपाती होने का अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार उनकी सामाजिक-सुधार-योजना भिन्न-भिन्न भागों में प्रवाहित हो रही थी और वह कार्य और वाणी दोनों प्रकार से भलीभाँति प्रकट होती है।

भूषण में मेल की भावना

जहाँ भूषण ने एक ओर हिन्दू-मुसलमानों के मेल के लिए विवाह सम्बन्ध की योजना की थी, वहाँ अकबर की नीति पर चलने के कारण ही बीरबल और मानसिंह की प्रशंसा की और ऐसे विवाह सम्बन्ध के लिए भगवन्तराय खीची, छत्रसाल, तथा बाजीराव पेशवा को प्रस्तुत कर दिया था, जिसके लिए सवाई जयसिंह द्वारा पंडितों की व्यवस्थाएँ भी बनवायी थीं। इनका उल्लेख पूर्व ही किया जा चुका है।

इसके अतिरिक्त भूषण ने सगुण और निर्गुण उपासना का सामञ्जस्य हिन्दू-मुस्लिम मेल के लिए ही कराया है और शिवाजी द्वारा दोनों प्रकार के ज्ञानियों का आदर करवा कर उनको दान से कृतार्थ करने का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

चाहत निर्गुण सगुण को ज्ञानवन्त की बान,
प्रकट करत निर्गुण सगुन शिवा निवाजी दान।

[शिवराज भूषण, १४३

मुसलमानों में 'निर्गुण' अर्थात् निराकार एकेश्वरवाद की प्रधानता है। भूषण ने इसके द्वारा मुसलमान और सूफी फकीरों का सम्मान कराकर मेल की भावना को दृढ़ीभूत कर दिया है।

फिर 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० १७९ में

छूटि गयो तो गयो परनालो,
सलाह की राह गहौ सरजालौं;.

द्वारा आदिलशाह को शिवाजी से सलाह करने को कहा गया है।

इसके पश्चात्

तिन ओट गहे अरिजात न जारे।

(शिवराज भूषण, १८३

तथा

मानौ हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि शिवाजी पै भेजत रसाल है।

(शिवराज भूषण, १०२

इन दोनों उदाहरणों में भी भूषण ने वही मेल की भावना को उत्कर्ष देने के लिए औरंगजेब के प्रति ये भाव कहलाये हैं।

'शिवराज भूषण' के छन्द २१० में भूषण ने

भली करै शिवराज सों औरंग करै सलाह।

कहला कर मेल के लिए ईश्वर से प्रार्थना करायी है।

शिवराज भूषण के छन्द नं० २१३ में

सरजा शिवाजी जयशाहि मिरजा को लीजे
सौगुनी बड़ाई गढ़ दीने हैं दिलीस को।

कहकर भूषण ने जयसिंह को शिवाजी के क़िले केवल मेल के लिए ही दिलवाये थे, जिसका उन्होंने स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया है। इसके अनन्तर भूषण ने 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० २४१ में केवल मेल को ही शान्ति का सर्वोत्तम उपाय बतलाया है। वे कहते हैं—

और करौ किन कोटिक राह,
सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे मेल को कितना महत्त्व देते थे और इसके लिए साम, दाम, दंड और भेद चारों का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार उसी ग्रन्थ के छन्द नं० २७८ में भी उसी मेल के लिए सलाह दी गयी है।

अन्त में उन्होंने

मेरे कहे मेर करु सिवाजी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तौं।

(शि० भू०, २८१

कहकर इस मेल की भावना को बहुत ही आवश्यकीय बतला दिया है। इनसे स्पष्ट है कि भूषण मेल के बड़े पक्षपाती थे और उनकी रचनाएँ तथा कार्य सभी इसका समर्थन करते हैं। गोस्वामी तुलसी-दास जी ने भी इस मेल की भावना को इसी रूप में रक्खा है।

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीत,
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि दुष्ट मनुष्य जब समाज को छिन्न-भिन्न करना चाहे तो देशहित के लिए उक्त सिद्धान्त ही ठीक लागू होता है। भूषण ने भी इसी का अनुगमन किया था और अन्त में वे सफल हुए थे!

महाकवि भूषण धार्मिक स्वतन्त्रता के भी पक्षपाती थे। वे लिखते हैं :—

आदि को न जाने देवी देवता न माने साँच,
कहूँ सो पिछानो बात कहत हौं अब की,
बब्बर अकब्बर हुमाऊँ हद्द बाँध गये,
हिन्दू और तुरुक की कुरान वेद जब की;
और बादसाहन में हती चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरें तब की
कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होतीं,
सिवाजी न होतो तो सुनति होत सब की।

[शिवा बावनी, ४३

भूषण ने इस छन्द में बाबर, हुमाऊँ, अकबर, शाहजहाँ और जहाँगीर को उत्तम कहा है और उनकी नीति को पसन्द किया है।

फिर वे 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० २८१ में लिखते हैं—

दौलत दिली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसराये तैं ।

इसमें फिर उसी नीति का समर्थन किया गया है।

भूषण ने इन्हीं मुगल बादशाहों की ही प्रशंसा नहीं की, वरन औरंगजेब के पोते जहाँदारशाह तक की तारीफ की है जिसका वर्णन पूर्व ही आ चुका है। इस प्रकार भूषण ने हिन्दू-मुसलमानों में मेल के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये थे और उन्हें सफलता भी होने लगी थी; परन्तु उनके पश्चात् उनका उचित उत्तराधिकारी न होने से इस कार्य मे बड़ी बाधा पड़ी और वह कार्य अधूरा ही रह गया।

भूषण में उत्साह और साहस की भावना

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। भूषण की रचना वीर-रस मय होने के कारण उसमें सर्वत्र उत्साह व्याप्त है। परन्तु कई स्थलों पर उत्साह बहुत उच्च कोटि का दिखलायी पड़ता है। इसी प्रकार साहस भी अनेक छन्दों में बहुत सुन्दर और उत्कृष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। इसके कुछ नमूने यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

यहि रूप अवनि अवतार धरि,
जेहि जालिय जग दंडियव
सरजा सिव साहस खग्ग गहि,
कलियुग सोइ खल खंडियव ।

[शि० भू०, ६२

इसमें शिवाजी द्वारा कलिकाल के नष्ट किये जाने का बड़ा ही साहसपूर्ण वर्णन है।

एक कहैं नरसिंह है संगर,
एक कहैं नरसिंह सिवा है;
राम कहा द्विजराम कहा,
बलराम कहा रन में अनुरागे,
बाज कहा मृगराज कहा,
अति साहस में शिवराज के आगे।

[शि० भू०, ६२१

भूषण शिवाजी के साहसपूर्ण कार्यों का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

दीनों कुख्वाब दिलीपति कौं,
अरु कीन्हों वजीरन कौ मुँह कारो;
नायो न माथहि दक्खिन नाथ,
न साथ में फौज न हाथ हथ्यारो।

[शि० भू, १८६

जासों बैर करि भूप बचै न दिगन्त,
ताके दन्त तोरि तखत तरेते आयो सरजा।

[शि० भू, १६८

उपर्युक्त छन्द में औरंगजेब के दरबार में शिवाजी के उपस्थित होने तथा उसकी कैद से निकल आने का बड़ा ही उत्तम वर्णन है,

साथ ही उनके साहस का कैसा सत्य से परिपूर्ण एवम् आकर्षक भाव व्यक्त किया गया है।

फिर भूषण कहते हैं :—

ताव दै दै मूँछ कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट मैं।

[शि० बा०, २६

रज लाज राजत आजु है,
महाराज श्री शिवराज में।

[शि० भू०, २६४

इन उदाहरणों से हम भूषण के ओजस्वी वर्णनों, उत्साहवर्द्धक कथनों तथा शिवाजी के साहसपूर्ण कार्यों का सरलतया अनुमान कर सकते हैं। इसका भारतवासियों पर कैसा प्रभाव पड़ा होगा, उसको भी हम सहज ही ध्यान में ला सकते हैं। महाकवि भूषण की रचना में यह सर्वत्र ओतप्रोत है। भारतीय जीवन में इन भावों का अभाव हो गया था। इसी कारण वे संसार में पश्चात्पद होते चले जाते थे। यही भूषण की भारत को सर्वोत्कृष्ट देन है।

नीति वर्णन

महाकवि भूषण ने जहाँ शिवाजी के अनेक गुणों का वर्णन किया है, वहाँ उनकी राजनीति का भी अच्छा दिग्दर्शन कराया है। उसके उदाहरण ये हैं :—

अति मतवारे जहाँ दुरदै दिहारियतु,
तुरगन में ही चंचलई पर कीति है,
भूषन भनत जहाँ पर लागै बानन में,
कोक पच्छिनहि माहिँ बिछुरन रीति है;
गुनि गन चोर जहाँ एक चित्तही के लोक,
बँधै जहाँ एक सरजाकी गुन प्रीति है।
कम्प कदली में वारि बुन्द बदली में,
शिवराज अदली के राज मैं यो राजनीति है।

[शि० भू०, २४८

भूषण का यह राजनीति-वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी के निम्नलिखित नीति-कथन से किसी प्रकार निम्न कोटि का नहीं माना जा सकता।

दंडयतिन कर भेद जहँ, नर्तक-नृत्य समाज।
जीतहिं मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज।

भूषण ने ऊपर के छन्द में सामाजिक चरित्र का चित्रण किया है। साथ ही वे शिवाजी के व्यक्तिगत चरित्र की विशेषताएँ बतलाते हैं।

सुन्दरता, गुरुता, प्रभुता, भनिभूषण होत है आदर जा मैं,
सज्जनता औ दयालुता, दीनता, कोमलता भलकै परजा मैं;
दान कृपानहुको करिबौ-करिबौ अयै दीनन कौ बरजा मैं,
साहन सोरन टेक विवेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं।

इस छन्द में शिवाजी के प्रभाव का भी बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। साथ में शिवाजी के अन्य कार्यों का भी दिग्दर्शन नीतिपूर्ण ढँग से करा दिया है।

इसके पश्चात् फिर भूषण वर्णन करते हैं—

पग रन में चल यों लसै, ज्यों अंगद पद ऐन ;
ध्रुव सो ध्रुव सो मेरु सो, सिवसरजा को बैन ।

[शि० भू०, २७४

इस छन्द में शिवाजी की युद्ध में दृढ़ता और सत्य-प्रतिज्ञा का बड़ा ही विशद वर्णन किया है।

भूषण ने अपने 'शिवराज भूषण' नामक ग्रन्थ में शिवाजी की नीति और गुणों का भिन्न-भिन्न पहलुओं से विचार किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में हम शिवाजी के केवल युद्ध सम्बन्धी कार्यों तथा युद्ध-प्रणाली का ही दिग्दर्शन नहीं करते, वरन् उनके व्यक्तिगत गुणों का, उनके जीवन की भिन्न-भिन्न घटनाओं और परिस्थितियों का बड़े ही विवेकपूर्ण ढग से चित्रण देखते हैं।

८—आक्षेपों का उत्तर

क्या भूषण भिखमंगे थे ?

अपने को साहित्यिक समझने वाले एक सज्जन ने भूषण के चरित्र पर यह आक्षेप किया है कि भूषण भीख माँगते फिरते थे। यहाँ हमें यह देखना है कि यह आक्षेप कहाँ तक युक्त-युक्ति है।

छत्रपति शाहू और महाराजा सवाई जयसिंह दोनों ही भूषण के आश्रयदाता थे। इन पर भूषण की रचना एवम् नीति का पूरा प्रभाव पड़ा था और वे राष्ट्रीय रंग में रँग गये थे, तथा देशोद्धार के उद्योग में तन-मन-धन से प्रयत्नशील थे। महाकवि भूषण की इस महत्ता को जो नहीं समझ सकता, वही उन्हें भिखमँगा आदि नामों से पुकार सकता है।

कुमाऊँ नरेश महाराज ज्ञानचन्द्र की अमूल्य भेट पर लात मारने वाले भूषण ऐसे स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए एक महाशय लिखते हैं—"किसी भटैत ने अपने आपको इतना नहीं गिराया है जितना भूषण ने।" यहाँ पर हम केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि भूषण के कार्य स्वयम् उनकी महत्ता प्रदर्शित कर रहे हैं। अतः हम पाठकों पर ही छोड़ते हैं कि यह लाञ्छन कहाँ तक ठीक है। हाँ, महाकवि भूषण ने भगवान् शिवाजी से प्रार्थना करते समय अपने को 'भिक्षुक' अवश्य कहा था। इस पर भी विचार कर लेना चाहिए कि इसमें कौन सी भावना निहित है। भूषण ने शिवाजी को ईश्वरावतार रूप में प्रतिपादित किया था और शिवाजी की मृत्यु के बहुत काल पश्चात् अपने को भगवान् शिवाजी का भिक्षु कहा था। बौद्धकालीन साहित्य में भिक्षु शब्द संन्यासी, या प्रचारक के अर्थ में प्रयुक्त होता था और यह अत्यन्त आदरणीय और त्याग-भावनासूचक शब्द समझा जाता था। भूषण की रचना में भी भिखारी (भिक्षु) शब्द उसी भाव का द्योतक है। जिन्होंने भूषण की रचना का अध्ययन गम्भीर एवम्

सूक्ष्म दृष्टि से किया है, उन्होंने अनुभव किया होगा कि भूषण की रचना आर्यकालीन संस्कृति और भावना को ही व्यक्त करने में अधिक अग्रसर हुई है।

उक्त लेखक ने भूषण को भिक्षु बतलाते हुए निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकतु याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है,
भूषन भनत शिवराज तव कित्ति संग,
और कौन कित्ति कहिबे कौं काँधियतु है;
इन्द्र कौ अनुज तै उपेन्द्र अवतार याते,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है,
पाय तर आय नित निडर बसाइबे कों,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है।

(शि० भू०, १०२

इसका अर्थ आपने इस प्रकार किया है:—

"भूषण कहते हैं तुम्हारी कीर्ति के समान किसकी कीर्ति है? तुम्हारे पैरों के नीचे आ गया हूँ। मेरे सिर पर पगड़ी बँधवा दो। मेरे लिए वह क़िला बनवा देना है।"

उपर्युक्त छन्द पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि उक्त सज्जन ने कितना अर्थ का अनर्थ कर डाला है।

इसका वास्तविक अर्थ यह है—

महाकवि भूषण कहते हैं कि अचल (पहाड़) जिसके पास जाते हैं वह उनकी रक्षा नहीं कर सकता, इसलिए वे (पहाड़) तेरे (शिवाजी के) पास आकर स्थायी प्रीति करते हैं। हे शिवराज ! तेरे यश के समान अन्य किसी का यश नहीं है, यद्यपि कहने को तो औरों की भी प्रशंसा की ही जाती है। तू इन्द्र के छोटे भाई विष्णु का अवतार है इसलिए ये पहाड़ तेरी भुजाओं का बल और सहारा पाकर तुमसे सलाह करते हैं। जब ये तुम्हारे संरक्षण में आ जाते हैं तब उन्हें निर्भय रहने के लिए आप उन पर क़िला बाँध देते हैं, मानो उनके सिर पर पगड़ी बाँधकर उनका सम्मान करते हैं।

यह छन्द शिवाजी की नीति को कितने भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है। मुख्यतः शिवाजी के पहाड़ी किलों का कितना साँगोपांग ऐतिहासिक विवेचन है। यहाँ शिवाजी को इन्द्र का अनुज कह कर एक वैदिक घटना का बड़ा ही मार्मिक और भावपूर्ण विश्लेषण किया गया है। भूषण को भिखमँगा सिद्ध करने के लिए इस छन्द को उद्धृत करना अज्ञानता की पराकाष्ठा है।

भूषण ने देश के लिए वैसा ही कार्य किया, जैसा प्राचीन काल में आर्य संन्यासियों और बौद्ध भिक्षुओं ने। दोनों ही ने देश और समाज के संरक्षण में अपना जीवन समर्पण कर निस्पृहता का पूर्ण परिचय दिया था।

उनकी पूतभावना, देश-प्रेम, अध्यवसाय, तथा संलग्नता देख कर सर्वत्र उन्हें सम्मान, अतुल धन-राशि, एवम् दिगन्तव्यापी यश प्राप्त हुआ था। उस धन का उपयोग भी देशहित में ही होता

था। महाकवि भूषण का सारा जीवन अपने आराध्यदेव मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान शिवाजी की रीति-नीति के प्रचार में ही व्यतीत हुआ था। इसका प्रभाव भी वही हुआ जैसा होना चाहिए था अर्थात् सारा देश उद्‌बुद्ध हो उठा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि देव जैसे प्रसिद्ध और उच्चकोटि के शृंगारिक कवि को कोई अच्छा आश्रयदाता तक न मिल सका था।

भूषण अन्य दरबारों में शिवाजी की प्रशंसा करते थे, जिनसे उन्हें हाथी घोड़े मिलते थे। वे स्वयम् कहते हैं—

देत तुरीगन गीत सुने बिन,
देत करीगन गीत सुनाये।

[शि० भू०, १३८

भूषण शिवाजी के वैसे ही भक्त थे जैसे गोस्वामी तुलसीदास राम के। अन्तर यही है कि गोस्वामी जी पारलौकिक मोक्ष के लिए प्रयत्नशील थे और भूषण सांसारिक मुक्ति चाहते थे। भूषण को हाथी-घोड़े आदि के रूप में जो धन मिलता था, वह निस्वार्थ भाव से राष्ट्र-निधि के रूप में परिणत हो जाता था। भूषण की यही राष्ट्रीयता देश और समाज के लिए उत्थान का कारण हुई। ऐसे व्यक्ति को यदि कोई भिखमँगा आदि उपाधियों से विभूषित करता है तो उसकी बुद्धि पर बिना तरस आये नहीं रह सकता।

महाकवि भूषण एक नवीन युग के विधायक थे; देश और समाज ने इसी रूप में उनका सम्मान भी किया था।

अश्लीलता का आरोप

भूषण की रचना वीर रस के लिए प्रसिद्ध है। उनकी एक-आध शुद्ध शृंगारिक रचनाएं भी अपवाद रूप में ही मानी जाती हैं। ऐसे महानुभाव के ऊपर एक सज्जन ने अश्लीलता का आरोप करके दुस्साहस का ही काम किया है।

इसकी पुष्टि में उन्होंने यह छन्द उद्धृत किया है :—

कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी विराज है,
पाँडरि पँवार जुही सोहत है चन्दावत,
सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है;
भूषण भनत मुचुकुन्द बड़ गूजर हैं,
बघेले बसन्त सब कुसुम समाज है,
लेइ रस एतेन को बैठि न सकत अहै,
अलि नवरंग जेब चम्पा शिवराज है।

[शि० बा०, २१

यह छन्द भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में कहा है। परन्तु उक्त सज्जन को इसमें अश्लीलता की गन्ध आती है। इसका अर्थ यह है—"औरंगजेब रूपी भौंरा राणा आदि राजाओं रूपी फूलों से कर रूपी रस वसूल करता है। परन्तु चम्पा रूपी शिवाजी के पास नहीं फटकता, और न कर ही वसूल कर सकता है।"

यह एक आलंकारिक वर्णन है जो वास्तविक तथ्य और शुद्ध ऐतिहासिक घटना का दिग्दर्शन कराता है। इस वर्णन को इससे सुन्दर रूप में शायद ही किसी कवि ने रक्खा हो। शिवाजी को अन्य राजाओं से उत्तम बताने के लिए ही यह छन्द कहा गया है। इसमें कवि को पूर्ण सफलता मिली है। साथ ही ध्वनि से औरंगजेब के आक्रमण की विफलता भी व्यक्त हो जाती है। यदि शृंगारिक कवियों ने चम्पा की उपमा बिगड़ैल नायक से दी, तो इसमें कवि के दृष्टिकोण का अन्तर है। प्राकृतिक वस्तुओं मे भलाई-बुराई तथा शुद्ध और अश्लील भावना खोज निकालना कवि की प्रतिभा, उसकी निरीक्षण-शक्ति एवम् समझ पर निर्भर है। इसमें चम्पा का क्या दोष !!! उदाहरण के लिए 'रहिमन विनोद' से यह रहीम का दोहा लीजिये —

सोई राज सराहिए ससि सम सुखद जो होइ ;
कहा बापुरो भानु है तप्यौ तरैयन खोइ।

इस नीति के दोहे में चन्द्रमा के समान शान्तिमय राज्य की प्रशंसा की गयी है; परन्तु कवि-गण चन्द्रमा से स्त्री के मुख की भी समानता करते हैं। तो क्या उक्त दोहा शृंगारिक बन जायगा ? कदापि नहीं, यह केवल दृष्टिकोण और भावना पर निर्भर है। शृंगारिक कवियों में जगत को शृंगार रूप में देखने की ही भावना रहती है। जिसे पीलिया रोग हो गया है, उसे हर वस्तु पीली ही पीली नजर आती है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें एक ही उपमा भिन्न-भिन्न कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार पवित्र और अश्लील रूप में व्यवहृत की है। अतः कोई शब्द अश्लील नहीं होता। उनका प्रयोग ही अच्छे और विकृत रूप में शुद्ध या घृणित कहा जा सकता है।

डाक्टर और कामुक व्यक्ति एक ही प्रयोग भिन्न-भिन्न भावनाओं को लेकर करते हैं। यही दशा भूषण की रचना की है। उन्होंने अपने प्रयोग नितान्त प्राञ्जल, परिष्कृत एवम् पवित्रतम रूप में ही किये हैं। उनमें किसी प्रकार की कलुषित भावना नाममात्र को भी नहीं है। परन्तु समालोचक सज्जन 'शिवाबावनी' के उक्त छन्द में भी अश्लीलता पाते हैं, जो उनकी अपरिमार्जित मति का ही परिचायक है।

भूषण ने जिन छन्दों में शत्रु-स्त्रियों के भयभीत होकर जंगल में भटकती फिरने तथा रोने का उल्लेख किया है, वे शिवाजी की विजय दिखलाने और उनका आतंक प्रदर्शित करने के लिए हैं। उन छन्दों में अश्लीलता का नाम भी नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपनी "कवितावली रामायण" में लंका की स्त्रियों के भागने और रोने बिलबिलाने आदि का वर्णन किया है; परन्तु उन्हें अश्लील किसी ने नहीं कहा। उन्हीं सज्जन ने भूषण की अश्लीलता सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित छन्द दिया है :—

अरे ते गुसलखाने बीच ऐसें उमराय,
लै चले मनाय शिवराज महाराज कौं ;
दावदार निरखि रिसानौ दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज कौं ।
[शि० भू०, २४

इस छन्द में शिवाजी को दलपति मस्त हाथी की उपमा दी गयी है, जिसे औरंगजेब के सरदार समझा-बुझाकर उसके दरबार से हटा ले गये थे। इसमें अश्लीलता का पता तक नहीं है।

अश्लीलता की भावना उक्त सज्जन के मस्तिष्क में इसलिए उत्पन्न हुई कि स्त्री को "गज-गामिनी" की उपमा दी जाती है। केवल इसीलिए यहाँ अश्लीलता का श्रोत फ़ूट पड़ा ! उक्त सज्जन यदि यह भी बतला देते कि जब तलवार की उपमा कटाक्ष से, घोड़े के मुँह की उपमा घूँघट से, भाले और तीर की तुलना सुरमा लगी आँख की नोक से, और भौंह की उपमा धनुष से दी जाती है, तो क्या ये सब वस्तुएँ भी शृंगारिक और अश्लील बन गयीं ?

उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण द्वारा भी भूषण की रचना को अश्लील ठहराया है—

बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की ,
तनियाँ न तिलक, सुथनियाँ, पगनियाँ न,
घामैं घुमरात छोड़ सेजियाँ सुखन की ;

भूषन भनत पति बाँह बहिया न तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की,
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की।

[शि० बा०, २१

इस छन्द को उक्त लेखक ने कामोद्दीपक तथा मानसिक प्रवृत्तियों को दुराचार की ओर ले जाने वाला बतलाया है।

इस छन्द मे भूषण ने शिवाजी के आतंक से भयभीत शत्रु-स्त्रियों का चित्र अंकित किया है। युद्ध के उपरान्त पराजित, भयत्रस्त और भागी हुई जातियों में यह स्थिति होती ही है। यह वर्णन नितान्त स्वाभाविक है। इसमें अपडर की प्रधानता होती है। इसे अश्लील और कामुकतापूर्ण कहना नितान्त अनुचित है। ऐसी दीन-हीन, आपद्ग्रस्त दशा का वर्णन पढ़कर यदि किसी में दया के स्थान पर कामवासना उत्पन्न हो तो उसे मनुष्य मानने मे भी संकोच होगा। इस दशा में दया और कामुकता को पर्यायवाची मानना पड़ेगा!

महाकवि भूषण ने कहीं पर भी यह नहीं लिखा कि शिवाजी अथवा उनकी सेना ने शत्रु-नारियों पर कभी किसी प्रकार का अत्याचार या परिहास किया।

शिवाजी का ही आदर्श लेकर भूषण ने 'शिवराज भूषण' और अन्य ग्रन्थों की रचना की थी और वही आदर्श वे सारे भारतवर्ष

में फैलाना चाहते थे। ऐसे व्यक्ति के विषय में यह कहना कि "उसने अश्लीलता का प्रसार किया", अत्यन्त घृणित एवम् गर्हित आक्षेप है। उन्होंने तो अपनी रचनाओं द्वारा शृंगारिक भावनाओं का तिरोभाव किया, तथा सदाचार, एकता और उत्साहपूर्ण वीरत्व का विस्तार करके एक आदर्श चरित्र की स्थापना की। भूषण के पश्चात् लगभग १५० वर्ष तक राष्ट्रीय जीवन प्रदान करने वाला कोई व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ, केवल उन्हीं की भावना ने देश और समाज की रक्षा की थी। ऐसे व्यक्ति के लिए अश्लीलता का आरोपण करना औचित्यपूर्ण है या नहीं, यह बिलकुल स्पष्ट है।

जाति-विद्वेष का आक्षेप

भूषण के ऊपर जातिगत विद्वेष का आक्षेप किया जाता है। कई विद्वानों ने उन्हें मुसलमान-द्रोही कहा है। यहाँ तक कि विश्व-वन्द्य महात्मा गाँधी तक ने अपने एक भाषण में भूषण की रचना पर यही आक्षेप किया है, यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार किया है कि "मैंने यह कथन एक मुसलमान सज्जन के कहने से किया है। मैंने स्वयम् उनकी रचना पर विचार नहीं किया है।" इस गर्हित आक्षेप पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

भूषण ने अराष्ट्रीय भावना को किंचितमात्र भी प्रश्रय नहीं दिया। वे विशुद्ध राष्ट्रीय कवि थे। उन्होंने केवल औरंगज़ेब की निन्दा उसके अत्याचार, साम्प्रदायिकता तथा अन्य घृणित भावनाओं के कारण की है, क्योंकि उसने धार्मिक कट्टरता के

कारण हिन्दू मुसलमान दोनों पर ऐसा घोर अनाचार किया था। यही नहीं, भूषण ने उन हिन्दू राजाओं की भी निन्दा की है जो औरंगजेब का साथ दे रहे थे। जो मुसलमान बादशाह अच्छे थे और हिन्दू-मुसलमानों का मेल चाहते थे, उनकी भूषण ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है इसकी पुष्टि में दो-चार उदाहरण पर्याप्त हैं।

आदि को न जानो देवी-देवता न मानो साँच,
कहूँ सो पिछानो बात कहत हौं अब की,
बब्बर अकब्बर हुमाऊँ हद बाँध गये,
दो में एक करी ना कुरान बेद दब की;
और पातसाहन मैं हुती चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरे तब की,
कासिहु की कला जाती, मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होत सबकी।

[शि० बा०, २४

इससे स्पष्ट है कि भूषण बाबर, हुमाऊँ और अकबर की असाम्प्रदायिक नीति को पसन्द करते थे, जिन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक भावों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया था और उन्हें हर प्रकार की धार्मिक स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। यही नहीं, वे अपने पूर्वजों के अनुकरण पर चलने वाले जहाँगीर और शाहजहाँ की भी प्रशंसा करते हैं।

औरंगजेब ने उस नीति को बदल दिया था। मन्दिरों को तोड़ कर ममजिद बनाने, हिन्दुओं को जबरन मुसलमान करने तथा अन्य प्रकार के अत्याचार के कारण ही भूषण ने उसकी निन्दा की थी। ऐसे व्यक्ति को भूषण जैसा राष्ट्रीय कवि कब अच्छा समझ सकता था।

भूषण ने शिवराज भूषण के २८१ वें छन्द में

दौलत दिल्ली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।

कह कर औरंगजेब को अपने पूर्वजों के प्रण की याद दिलायी थी और उसे समझाया था कि उसके इस प्रकार के कार्यों से बाबर और अकबर के सुयश में कलङ्क-कालिमा लग जायगी।

इसी की पुष्टि भूषण ने नीचे लिखे छन्द द्वारा भी की है।

सतयुग त्रेता औ द्वापर कलियुग माँहि,
आदि भयो नाहिं भूप तिनहूँ तें अगरी ;
अकबर बब्बर हुमाऊँ साह सासन सों,
स्नेह तें सुधारी हेम हीरन ते सगरी।

[भूषण ग्रन्थावली फुटकर छन्द ४

इस छन्द में भूषण ने अपनी हार्दिक भावना को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। वे प्रत्यक्ष रूप में लिखते है कि बाबर, हुमाऊँ और अकबर ने सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के उत्कृष्ट राजाओं से भी अधिक स्नेह से भारतीय समाज का संरक्षण

कर प्रेम-भाव दर्शाया था तथा उसे धन-धान्य से परिपूर्ण किया था। इससे अधिक उत्कृष्ट भाव तो किसी हिन्दू कवि ने मुसलमानों के प्रति प्रकट ही नहीं किया। जिस व्यक्ति ने इन मुग़ल बादशाहों को राम के समक्ष ला बिठाया है, ऐसे व्यक्ति को यदि कोई जातिद्वेषी कहता है तो उसकी बुद्धि तरस खाने योग्य माननी पड़ेगी।

यदि भूषण में सामाजिक या राष्ट्रीय द्वेष होता तो उनके मुख से किसी मुसलमान की प्रशंसा न निकलनी चाहिए थी। परन्तु यह महाकवि केवल औरंगज़ेब के पूर्वजों की ही प्रशंसा नहीं करता, वरन् औरंगज़ेब के पोते जहाँदारशाह की भी भूरि-भूरि तारीफ़ करता है। उनकी प्रशंसा का एक छन्द निम्नलिखित है :—

डंका के दिये ते दल डंबर उमंड्यौ,
उदमंड्यौ उडुमंडल लौं खुर की गरद है,
जहाँदारसाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड में मढ़त मारू राग बम्ब नद है;
भूषण भनत घने घुम्मत हरौल बारे,
क्रिम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद है,
हद्दन छपद महि मद फरनद होत,
कद्दन भनद से जलद हलद्द है।*

*हिन्दुस्तानी पत्रिका, सन् १९३४ जुलाई, पृ० ३२९

बीजापुर और गोलकुंडा के शिया नरेशों के दरबारों में भी भूषण का रहना पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण की रचना में समाज-द्वेष का नाम भी नहीं था। भूषण ने तो औरंगज़ेब का साथ देने वाले अनेक ऐसे हिन्दुओं की भी निन्दा की है, जो उसके अत्याचार मे सहयोग दे रहे थे। जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह का उदाहरण इसके लिए पर्याप्त है। उन्होंने बूँदी नरेश भाऊसिंह (औरंगज़ेब के दीवान) और करणसिंह को भी निन्दा के योग्य ठहराया है। ये सब केवल इसीलिए बुरे कहे गये हैं कि इन्होंने दुष्ट-प्रकृत औरंगज़ेब की सहायता की थी। साथ ही उन्होंने 'शिवाबावनी' के छन्द नं० ९ में पराजित दशा में भागती हुई हिन्दू और मुसलमान दोनों की स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन "बीबी गहैं सूथनी सुनीबी गहैं रानियाँ' कह कर किया है।

इन उदाहरणों से यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है कि भूषण में जातीय द्वेष नाममात्र को भी नहीं था। वे तो शुद्ध राष्ट्रीय कवि और हिन्दू-मुसलमानों के मेल के पक्षपाती थे। उन्होंने इन दोनों जातियों में मेल को दृढ़ करने के लिए आपस मे विवाह सम्बन्ध भी सम्पन्न कराये थे और ऐसा मेल कराने वालों की भरपेट प्रशंसा की है।

इन विवरणों से हम भूषण विषयक राष्ट्रीय भावना का ठीक-ठीक अनुमान कर सकते हैं।

म्लेच्छ और तुर्क शब्द

जिन्होंने भूषण का गम्भीर अध्ययन किया है, वे भली-भाँति समझ सकते हैं कि भूषण की शब्द-योजना की एक विशेष शैली है। वे बहुधा वैदिक ढग पर शब्दों का प्रयोग करते हैं। उन शब्दों की व्याख्या का भी एक विशेष स्वरूप होता है। भौंसिला शीशोदिया और गुमान शब्दों की निरुक्ति और उनकी व्याख्या इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। म्लेच्छ और तुर्क शब्दों का प्रयोग भी भूषण ने उसी ढंग पर किया है।

म्लेच्छ शब्द का अर्थ है गन्दे और घृणित भाव रखने वाला व्यक्ति और तुर्क शब्द का अर्थ है जालिम या अत्याचारी। भूषण ने इन दोनों शब्दों का प्रयोग औरंगजेब की सेना के लिए किया है। इनके कुछ नमूने ये हैं :—

भूषन भनत भौंसिला की दिलदौरि सुनि,
धाक ही मरत म्लेच्छ औरंग के दल में।

[शि० भू०, ३००

इसी प्रकार 'शिवराजभूषण' के ५६ वें छन्द में—

त्यों म्लेच्छ वंश पर शेर शिवराज हैं,

कहने में भूषण का आशय म्लेच्छ के समूह से ही है। अनेक साहित्यिक कवियों और आचार्यों ने 'वंश' का अर्थ समूह लिया है।

अब शिवाजी की तलवार की भी प्रशंसा देखिये।

लीनो अवतार करतार के कहें तें काली,
म्लेच्छन हरन उद्धरन भुवि भार को।
[शि० भू०, ८४

यहाँ भी उन्हीं दुष्टों के दमन का उल्लेख है।

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के छन्द १६३ में

"कुल मलिच्छ कुल चन्द।"

औरंगजेब के लिए स्पष्टरूप से कहा गया है। यहाँ पर 'कुल' शब्द साफतौर से समूह का द्योतक है।

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के छन्द १७४ में—

"म्लेच्छ मनसब छोड़ि।"

से आशय स्पष्ट औरंगजेब के सरदारों से है।

फिर छन्द १८५ में—

"म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै।"

कहकर अधर्मियों का लोप कर देने के लिए कहा गया है। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचना में कहीं भी मुसलमानों को बुरा नहीं कहा और न इस शब्द का प्रयोग ही किया। भूषण के आरोप केवल औरंगजेब और उसकी अत्याचारी सेना के प्रति हैं।

इसी भाँति 'शिवराज भूषण' के छन्द न० २३१, २५३, २७६, २९६, ३०६, ३५९, तथा कहीं-कहीं 'शिवाबावनी' और फुटकर छन्दों में यह म्लेच्छ शब्द घृणित एवम् गन्दे भावों का ही द्योतक है। भूषण ने 'चकता' शब्द केवल औरंगजेब के लिए प्रयुक्त किया

है, यद्यपि यह शब्द चंगेजखाँ के वंशज सभी मुग़लों के लिए प्रयुक्त हो सकता था, परन्तु एक भी स्थल उनकी सारी रचना में न मिलेगा जहाँ यह शब्द औरंगजेब से भिन्न मुग़ल बादशाह या सरदार के लिए प्रयोग में आया हो। चंगेजखाँ महान् अत्याचारी और लुटेरा था; उसके कारनामे इतिहास के पृष्ठों पर रक्तरंजित हैं। इसी भावना को लेकर औरंगजेब के प्रति यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। यथा:—

पातसाह चकता की छाती माँहि छेवा है।

[शि० भू०, ७६

"सुनि सुजजीरन यों कह्यौ, सरजा शिव महाराज।
भूषण कहि चकता सकुचि, नहिं सिकार मृगराज।

[शि० भू०, ९४

चकवती चकता चतुरंगिनि,
चारियौ चापि लई दिसि चक्का।

[शि० भू०, १३२

हाड़ा, राठौर, कछवाहे गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाँऊ धरि डरि कै।

[शि० भू०, १३३

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ६९, 'शिवाबावनी' के छन्द २७, ३४, ४९ और फ़ुटकर छन्दों में 'चकता' शब्द केवल औरंगजेब के ही लिए आया है।

अब 'तुर्क' शब्द को लीजिये। इसका प्रयोग भूषण ने औरंग-जेबी सेना के ही लिए किया है। यथा :—

हिन्दु कौ दिवाल भयौ काल तुरकन कौ।

[शि० भू०, ७२

काल करत तुरकान को सिव सरजा करवाल।

[शि० भू०, ८६

निज बचिबै को जपत जनु तुरकौ हर कौ नाम।

[शि० भू०. १०४

"तुरकान गन व्योम यान हैं चढ़त,
बिनुमान है चढ़त बदरंग अवरंग में।

[शि० भू०, १२४

फैले मध्यदेश में समूह तुरकाने के।

[भू० ग्रन्थावली, फुटकर छन्द, पृ० १३५

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण ने अपनी रचना में सर्वत्र 'तुर्क' शब्द औरंगजेब की सेना के लिए प्रयुक्त किया है। ऐसे उदाहरणों से भूषण की रचना भरी पड़ी है। 'भूषण ग्रन्थावली' के छन्द नं० ६६, २६४, ३२८, ३३४ और अन्य रचनाओं में अनेकों छन्द इसी के प्रत्यक्ष नमूने हैं।

इन शब्दों के अतिरिक्त भूषण ने औरंगजेबी सेना के लिए अत्याचारी होने के कारण 'खल' शब्द का भी प्रयोग किया है। जैसे,

असंसंकककुलि खल।

[शि० भू०, ३२६

शिवाजी की धाक मिलैं खल कुल खाक बसे,
खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं।
[शि॰ भू॰, ३६२

भूषण सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाये खल,
खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं।
[शि॰ भू॰, ३६३

खल की तरह 'दुर्जन' शब्द का प्रयोग भी भूषण ने औरंगजेब के सरदारों और सेना के लिए किया है। यथाः—

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार,
चढ़ी उत्तर पहाड़ डरि शिवाजी नरिन्द ते।
[शि॰ भू॰, १००

दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ैं
धनुष के साथ गढ़ कोट दुर्जन के।
[शि॰ भू॰, ११३

इस प्रकार खल और दुर्जन शब्द भी वैसे ही हैं, जैसे म्लेच्छ तुर्क और चकता। इनका प्रयोग भी वैसा ही किया गया है। इसमे कहीं भी समाजगत द्वेष और घृणा फैलाने की भावना नहीं है। यदि भूषण को ऐसा करना होता तो वे मुसलमान शब्द का भी उसी भांति प्रयोग कर सकते थे जैसा उन्होंने उक्त शब्दों का किया है, परन्तु भूषण का विचार केवल औरंगजेब और उसके अत्याचारी साथियों के प्रति घृणा पैदा करने का था। इसके

भीतर भूषण की राष्ट्रीय भावना का स्रोत निहित था जिसे उन्होंने समाज में व्याप्त कर दिया था।

मध्य देश पर आरोप

भूषण ने भगवन्तराय खीची की मृत्यु पर एक शोकसूचक कवित्त लिखा था जिसमे उसकी वीरता की प्रशंसा भी की गयी थी। उसमें उन्होंने खीची को मध्यदेश का राजा बतला कर तुर्कों (अत्याचारियों) से आक्रान्त प्रदेश का दिग्दर्शन कराया है। वह छन्द यह है :—

उठिगो सुकबि शील उठिगो जशीलो डील,
फैलो मध्य देश में समूह तुरकाने को;
फूटे भाल भिक्षुक के जूझे भगवन्तराय,
अरराय टूट्यो कुल खम्भ हिन्दुआने को*

मिश्र बन्धु महोदयों ने इस छन्द में वर्णित 'मध्य देश' को मध्य प्रदेश (C. P.) माना है† और लिखा है कि "इस छन्द में 'युक्त प्रान्त' का उल्लेख नहीं, मध्य प्रान्त का वर्णन है।" उनसे मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इस छन्द मे ब्रिटिश राज्य के २०वीं शताब्दी मे बने प्रान्तों का उल्लेख न समझें। यह छन्द अब से दो सौ वर्ष पूर्व का बना है। उस समय फतहपुर, कानपुर, प्रयाग और आगरे के बीच का स्थान मध्यदेश कहलाता था।

---

*भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द १२ पृ० १३४

†माधुरी, वैसाख सं० १९८१ वि० में मिश्रबन्धुओं का लेख

मतिराम के पन्ती बिहारीलाल कवि ने निम्नलिखित दोहे में अपनी जन्मभूमि तिकवांपुर को मध्यदेश के अन्तर्गत बतलाया है।

बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिन्दी के तीर ;
बिरच्यौ भूप हमीर जनु मध्य देस को हीर ।*

भगवन्तराय खीची के आश्रित गोपाल कवि ने भी असोथर (जिला फतहपुर) नरेश खीची को मध्य देश के अवतार रूप में ही इस प्रकार वर्णित किया है।

श्री धनिकेस नरेस ये मध्य देस अवतार ;
तिनके नृप भगवन्त जिन धर्‍यो भुवन भुव भार ।†

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि असोथर मध्य देश प्रान्त में ही था और फतहपुर, कानपुर, प्रयाग तथा आगरे के मध्य का प्रान्त मध्य देश कहलाता था। उस समय का मध्य देश वर्तमान मध्य-प्रान्त (C. P.) नहीं था। भूषण के मुख से इस प्रान्त को युक्त-प्रदेश कहलाना अनभिज्ञता का द्योतक है। इस प्रान्त का नाम युक्तप्रान्त सन् १९०१ ई० में लार्ड कर्जन के समय में रक्खा गया था।

ऐतिहासिक आक्षेप

महाराज छत्रसाल के दरबार में भूषण के जाने का समय मिश्रबन्धु महोदय सम्वत् १७३५ या १७४० वि० मानते हैं।

---

* 'विक्रम सतसई' की 'रस चंद्रिका' टीका तथा माधुरी, ज्येष्ठ सं० १९८१ वि० में भूषण मतिराम पर पंडित कृष्णविहारीजी मिश्र की टिप्पणी।

† सन् १९०९-११ की खोज रिपोर्ट नं० ९८, पृ० १९०।

आपका कथन है, "हमारी समझ में यह भी नहीं आता कि चौंसठ वर्ष का वृद्ध महाराज (पन्ना नरेश छत्रसाल) किसी की पालकी का डंडा अपने कन्धे पर धर लेगा। ये तो युवापन की उमंगें हैं। फिर छत्रसाल कोई ऐसे वैसे न थे। उनके राज्य की वार्षिक आय दो कोटि कही जाती है। हमारे विचार में पालकी कन्धे पर धरने वाली घटना १७३५-४० वि० के लगभग हुई होगी।"*

आपके विचार में अवस्था, धन और राज्य का महत्व सबसे अधिक है। आपने यह विचार ही नहीं किया कि त्याग, परोपकार, सदाचार और उत्तम भावनाओं का उनसे कहीं ऊँचा स्थान है। स्वामी शंकराचार्य ३० वर्ष की ही अवस्था में विश्ववन्द्य हो गये थे। भूषण ने छत्रसाल की पालकी में कन्धा लगाने पर कहा था,

साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।†

इससे स्पष्ट है कि छत्रसाल के दरबार मे जाने से पूर्व वे सितारा-नरेश शाहू के दरबार में हो आये थे जिसे मिश्रबन्धु महोदय भी मानते है। साथ ही यह भी निश्चित है कि शाहू सं० १७६४ वि० में औरंगजेब की जेल से छूटे थे और सम्वत् १७६५ वि० में सितारा की गद्दी पर बैठे थे। इस विषय में यदुनाथ सरकार, राजवाड़े, तकाखव, कैलूस्कर तथा अन्य इतिहासकार सब एकमत हैं। यदि मिश्रबन्धु वर्ग इन सब इतिहासकारों को शाहू

---

*सुधा, वर्ष ६, खंड १, संख्या ५, मार्गशीर्ष सं० १९८९ वि०।

†भूषण ग्रन्थावली में छत्रसाल दशक, छन्द १०, पृष्ठ १०८।

के राज्याभिषेक का समय वास्तविक समय से कम से कम तीस वर्ष पूर्व मानने को राजी कर लें तो हम भी उनके कथन को स्वीकार करने के लिए शायद सहमत हो जायँगे। परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं। अतः मिश्रबन्धु महोदयों की सम्मति मानने में हम असमर्थ हैं और न कोई भारत का इतिहासज्ञ आपकी इस उक्ति को स्वीकार कर सकता है।

फिर दूसरे स्थल पर ये ही महोदय लिखते हैं, "जिस काल शिवाजी ने उनका सत्कार किया था, तब वह किसी अन्य के यहाँ नहीं गये। जब शिवाजी का शरीरान्त हो गया तब शाहू के गुरुतर भूपाल होने पर भी भूषण अन्यान्य आश्रयदाताओं के यहाँ दौड़ते फिरे, जिससे समझ पड़ता है, शाहू ने उनका यथायोग्य सम्मान नहीं किया और केवल अपनी भलमन्सी के कारण शिवाजी के सम्बन्ध को स्मरण करके उन्होंने शाहूजी के भी थोड़े से छन्द बना दिये, जो उमंगपूर्ण भी न थे।"*

भूषण छत्रसाल के यहाँ जाने से पूर्व कुमाऊँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, तथा शाहू, बाजीराव पेशवा और दिल्ली नरेश के यहाँ जा चुके थे। इनमें सबसे उत्तम उन्होंने शाहू को माना है। ऐसी दशा में 'शाहू' के प्रति भूषण का आदर न मानना उपहासास्पद ही है।

भूषण के छन्द छत्रसाल को छोड़ कर अन्य किसी राजा की प्रशंसा में इतने नहीं मिलते जितने 'शाहू' की प्रशंसा में।

*सुधा, वर्ष ३ खंड १, संख्या ४ मार्गशीर्ष सं० १९८६ वि।

अतः उन्हें नगण्य नहीं कहा जा सकता। 'शिवाबावली' के अनेकों छन्द उनकी प्रशंसा में हैं जिन्हें मिश्रबन्धु महोदय भी उत्तम मानते हैं। इन्हें केवल 'शिवाजी के सम्बन्ध' के कारण रचा हुआ नहीं बतलाया जा सकता।

भूषण के तीन ही आश्रयदाता प्रधान थे, (१) सवाई जयसिंह (२) छत्रपति शाहू (३) छत्रसाल। इनमें 'साहू' का स्थान उनके हृदय में सबसे ऊँचा था। शिवाजी तो उनके 'इष्टदेव' थे। उस कोटि में किसी मानव को रक्खा ही नही जा सकता।

भूषण और भटैती

हिन्दी के कुछ सज्जनों ने महाकवि भूषण पर यह आक्षेप किया है कि उन्होंने शिवाजी की झूँठी प्रशंसा की है, और वे दूसरे दरबारों मे भी भटैती करते फिरते थे। अब देखना यह है कि यह लाञ्छन कहाँ तक उचित है।

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु भूषण के जन्म से एक वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। अतः भूषण का शिवाजी की प्रशंसा करना भटैती नहीं कहला सकता। उन्होंने शिवाजी को ईश्वर का अवतार माना है और उन्हें पुण्यश्लोक कहा है। अधिकांश हिन्दी के विद्वानों ने भूषण को शिवाजी के दरबार में मान कर भयंकर भूल की है। इसी कारण उन्होंने उन्हें 'अत्युक्ति का पुल' बाँधने वाला बतलाया है। परन्तु वे यह नहीं समझते कि उन्होंने स्वयम् गोस्वामी तुलसीदास के—

"कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना; सुनि धुनि गिरा लागि पछिताना।"
की तरह—

"भूषण यों कवि के कविराजन,
राजन के गुन गाय हिरानी;
पुण्य चरित्र शिवा सरजे सर,
न्हाय पवित्र भई पुनि बानी।"

[शि० भू०, २६१

का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि भूषण के हृदय में उक्त विचार विद्यमान था और वे औचित्य तथा अनौचित्य को भली-भाँति समझते थे।

मानव समाज के उद्धारक ऐसे महान् व्यक्ति को भटैती की उपाधि देना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है।

भूषण की राष्ट्रीयता

भूषण की रचना पर एक महान् आक्षेप अराष्ट्रीयता का भी किया जाता है, परन्तु अन्य दोषारोपणों की भाँति यह आक्षेप भी मिथ्या है। भूषण की राष्ट्रीयता शिवाजी के आदर्श पर निर्धारित है। उसमें न सामाजिक द्वेष की गन्ध भरी हुई थी और न कोई अराष्ट्रीय भावना।

भूषण आजीवन सारे देश में राष्ट्रीय विचार फैलाने का स्तुत्य उद्योग करते रहे। उसका कारण था हिन्दुओं की आपसी फूट और जाति-विभिन्नता। संगठनहीन होने के कारण उन्हें सर्वत्र

औरंगजेबी अत्याचार का शिकार होना पड़ता था। उन पर धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों प्रकार की आपदाएँ आयी हुईं थीं, जिनसे त्राण पाना कठिन हो रहा था। अतः उनमें हिन्दुत्व की विचार-धारा बहाना और उन्हें संगठित करना भूषण का प्रधान कर्तव्य हो रहा था। इसी उद्देश्य से उन्होंने तत्कालीन मध्यदेश (वर्तमान युक्त प्रान्त) की छोटी-बड़ी रियासतों और पहाड़ी राज्यों में भ्रमण किया था तथा राजपूताने की रियासतों में घूमकर सवाई जयसिंह को उत्तरी भारत के इस राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया था।

भूषण के इस आन्दोलन में सामाजिक द्वेष नाममात्र को भी न था। उन्होंने तो बीजापुर और गोलकुँडा की शिया रियासतों को भी अपने इस संगठन में सम्मिलित कर लिया था। उनका आन्दोलन औरंगजेबी साम्राज्यवाद और उसके पैशाचिक कृत्यों के विरुद्ध था, न कि मुसलमान सम्प्रदाय के खिलाफ। हिन्दू-मुसलमानों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराने तथा मेल-जोल बढ़ाने का भूषण ने जो उद्योग किया था, उसी से हम उनके उस राष्ट्रीय स्वरूप का अनुमान कर सकते हैं। उनकी दृष्टि में कमजोर होना पाप था; संगठन और शक्ति-अर्जन ही हिन्दू-समाज की रक्षा कर सकता था। इसी लिए वे उन्हें आपस में लड़ने से बचाते रहते थे।

शिवराज भूषण के २७६ वें छन्द में—

हिन्दु बचाय बचाय यही,
अमरेश चँदावत लौं कोइ टूटै।

कह कर उन्होंने इसी भावना को अभिव्यञ्जित किया है।

भूषण सदैव राष्ट्रीय दृष्टि से 'हिन्दुत्व' की महत्ता प्रदर्शित करते रहते थे। महाराज छत्रसाल को 'छत्रसाल दशक' के ८ वें छन्द में हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए वे कहते हैं:—

भूषण भनत राय चम्पति को छत्रसाल,
रुप्यौ रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुआने की।

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के १२ वें छन्द में भगवन्तराय खीची को भी वे हिन्दुत्व का स्तम्भ मानते हुए कहते हैं—

फूटे भाल भिक्षुक के जूझे भगवन्तराय,
अरराय टूट्यौ कुल खम्भ हिन्दुआने को।

एक छन्द में भूषण 'हिन्दुत्व' के नाश का कारण बतलाते हुए कहते हैं—

आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुआन टूटै।

[शि० भू०, फुटकर छन्द ११७

फिर हिन्दू धर्म और संस्कृति के रक्षक रूप में भूषण शिवाजी का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यौ है खुमाना नर वाना हिन्दुआना को।

[शि० भू०, फुटकर छन्द १८, पृ० ११२

राष्ट्रपति के रूप में भूषण शिवाजी के यश का वर्णन इस प्रकार करते हैं :—

भूषण भनत मुगलान सबै चौथ दीन्हीं,
हिन्द में हुकुम साहिनन्दजू को ह्वै गयो।

[शि० भू०, फुटकर छन्द २२, पृ० ११३

अब शाहू के विवाह का ढँग भी देखिये :—

ऐसे ब्याह करत बिकट साहू साहन सों,
हद्द हिन्दुआन जैसे तुरक तताग की।

[शि० भू०, फुटकर छन्द ३०, पृ० ११८

इन उदाहरणों से हम भूषण की हिन्दुत्व सम्बन्धी भावना का अनुमान कर सकते हैं। परन्तु इसमें कहीं भी अराष्ट्रीयता का दर्शन नहीं होता। यह ठीक है कि भूषण की राष्ट्रीयता में हिन्दुओं का ही विशेष चित्रण किया गया है। उस समय अधिकांश मुसलमान साम्प्रदायिक रँग में रंगे हुए थे, फिर भी उच्च कोटि के मुसलमानों का अभाव न था। इसीलिए भूषण ने अनेक मुसलमान सज्जनों की प्रशंसा की है। वे अकबर, बाबर आदि बादशाहों की नीति के प्रबल पक्षपाती थे और औरंगजेब को भी उसी नीति पर चलने का आदेश देते रहते थे।

इस पर भी यदि कुछ विद्वेषीजन उनकी रचना पर अराष्ट्रीयता अथवा जातिगत विद्वेष का आरोप करें तो यह उनकी अनभिज्ञता का ही द्योतक है। लोगों ने भूषण के विचारों को ठीक-ठीक

नहीं समझा, इसीलिए वे भूषण की कविता पर आक्षेप कर बैठते हैं। मुख्यतया 'तुर्क' शब्द का समाजवाचक समझ कर ही उनके हृदय में इस प्रकार के विचार उठ खड़े होते हैं। परन्तु भूषण की शैली वैदिक होने से उनके शब्दों की व्याख्या का रूप भी भिन्न होता है। भूषण ने 'तुर्क' शब्द 'जालिम' के अर्थ में लिया है। उन्होंने उसे कहीं पर भी मुसलमानवाची नहीं माना और न इस रूप में प्रयुक्त ही किया है।

भूषण ने पददलित हिन्दू जाति को संगठन का महत्व समझा कर समाज को एक शृंखला में आबद्ध करने का उद्योग किया था। हिन्दू समाज की संकुचित भावनाओं को उन्होंने जड़मूल से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया था। अकबर के समय में जिस वैवाहिक सम्बन्ध को हिन्दुओं द्वारा तिरस्कृत एवम् घृणित कहा जा चुका था, तथा जिसके लिए राजपूताने के अनेक प्रधान राज्यों में पारस्परिक शत्रुता की गहरी नींव जम चुकी थी, उसी कार्य को भूषण ने जिस बुद्धिमत्ता से सुलझाया था, वह भूषण के ही योग्य था। अपने समकालीन तीन विभूतियों—बाजीराव पेशवा, छत्रसाल बुँदेला और सवाई जयसिंह—को पारस्परिक मैत्री में आबद्ध कर देना भूषण का ही काम था। केवल यही नहीं, उन्होंने उनके सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी बहुत समानता ला दी थी। ये विभूतियाँ उस समय हिन्दू जाति के प्राण थीं। शिवाजी की एकत्रित राष्ट्रीय विभूति नष्ट होने पर उसका पुनरुद्धार करने वाले बाजीराव पेशवा ही थे। छत्रसाल बुँदेला ने

३५०) वार्षिक आय की जागीर से अपना एक बड़ा स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। सवाई जयसिंह के विषय में टाड राजस्थान में लिखा है कि उन्होंने १०९ विशेष कार्य किये थे। वे बड़े राजनीतिज्ञ, सभाचतुर, विज्ञानवेत्ता और उदार व्यक्ति थे। भूषण ने इनके सम्बन्ध मे 'भारी भूमि भार के उबारन कौ ख्याल है' कह कर उनकी लगन और देश-प्रेम की ही ओर संकेत किया है।

भूषण की राष्ट्रीयता के विषय में विद्वत्प्रवर महामति तपस्वी सावरकर महोदय अपनी 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक मे लिखते हैं:—

"हमारे उन राष्ट्रीय चारणों में जो हिन्दू स्वाधीनता के युद्ध के उस काल में देश भर में भ्रमण करके हिन्दुस्तान को 'तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्वम्', का उपदेश दे रहे थे, महाकवि भूषण बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने औरंगजेब को ललकार कर कहा था:—

हिन्दुन के पति सों न विसात,
सतावत हिन्दु गरीबन पाय के।

तथा

जगत में जीते महावीर महाराजन ते,
महाराज बावन हू पातसाह लेवा ने।

इस दृष्टि से शिवाजी महाराज और उनके साथियों के पराक्रमों की समस्त हिन्दुस्तान में स्तुति हो रही थी। भूषण मराठे नहीं थे. परन्तु शिवाजी से लेकर बाजीराव पर्यन्त समस्त मराठा-विजेताओं की विजय-यात्रा का उन्हें उतना ही अभिमान

था, जितना स्वयम् मराठों को। भूषण हिन्दुत्व के परम अभिमानी थे और अपने जीवन के शेष क्षण तक वे अपने उद्दीपक कवित्तों को सुनाकर तत्कालीन हिन्दू नेताओं में हिन्दुत्व का अभिमान जगाते रहते थे।

श्रीयुत गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपने गुजराती 'शिवराज-शतक' नामक ग्रन्थ में भूषण के इस उद्देश्य तथा भ्रमण का स्पष्ट उल्लेख किया है।

उपर्युक्त वर्णन से हम भूषण की यथार्थवादिता और उनके राष्ट्रीय स्वरूप का अनुमान कर सकते हैं। उन्होंने कभी किसी की झूठी प्रशंसा नहीं की, और न उनकी रचना से इस प्रकार के भाव व्यक्त ही किये जा सकते हैं।

जयपुर नरेश सवाई जयसिंह तथा छत्रपति शाहू के सम्बन्ध में श्री सरदेसाई अपने भारतीय इतिहास के मध्य विभाग खण्ड में लिखते हैं—"शाहू महाराज और सवाई जयसिंह में तो हिन्दू-पद पादशाही स्थापन और धर्म-रक्षा के विषय में विवाद ही चल पड़ा था कि हिन्दू धर्म के लिए हमने क्या किया और तुमने क्या-क्या किया? तथा किसने हिन्दुओं और उनके धर्म रक्षणार्थ अधिक उद्योग किया।" ऐसे दो व्यक्तियों की मैत्री कराना क्या साधारण कार्य था?

इन सब बातों से हम भूषण के कार्यशैली का सरलतया अनुमान कर सकते हैं। उनका लक्ष्य था अत्याचार का निरोध

*हिन्दुत्व, पृ० ४१-५३।

और सामाजिक सुधारों द्वारा हिन्दू जाति में ऐक्य और संगठन स्थापित करना। परन्तु देश को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसके लिए वे देश से जाति-भेद, समाज-भेद और छुआछूत आदि बुराइयों को उठा देना चाहते थे, जिससे जातीय संगठन में किसी प्रकार की बाधा न पड़े और राष्ट्र एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में परिगणित हो सके।

भूषण का वह युग 'स्वर्ण प्रभात' के नाम से विख्यात था जिसमें अनेक विभूतियाँ अवतीर्ण होकर राष्ट्रोत्थान में संलग्न थीं। उसके सूत्रधार थे भूषण, जो भारत के रंगमंच पर सर्वोत्कृष्ट पात्र की भाँति अपना खेल खेल कर अन्तर्धान हो गये थे।

उपसंहार

यद्यपि इस पुस्तक में भूषण-विषयक अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी उनके जीवन की अनेकों घटनाएँ या तो अन्धकार के गर्त में विलीन हैं, अथवा लुप्तावस्था में हैं। अब तक जितनी बातें जानी जा चुकी हैं, उनसे स्थाली पुलाक न्यायेन यह तो अवश्य प्रतीत हो जाता है कि भूषण का व्यक्तित्व महान् था और उनके कार्य राष्ट्र के लिए ईश्वरीय देन के समान थे।

भूषण के आक्षेपकों पर गम्भीर दृष्टि डालने से विदित होता है कि हम उन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) वे सज्जन जो भूषण की साम्राज्यविरोधी नीति को अहितकर समझते हैं।

(२) वे महाशय जिन्हें उनकी रचना में जाति-विद्वेष की गन्ध आती है।

(३) वे महानुभाव जो अहिंसा को अपना ध्येय मानकर भूषण की क्रान्ति को बाधक समझते हैं।

भूषण ने साम्राज्यवाद के विरोध में मोर्चा लिया था और औरंगजेबी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया था। अतः साम्राज्य के भक्तों और समर्थकों को उनसे चिढ़ होना स्वाभाविक है और उन लोगों ने मिस मेयो की 'मदर इंडिया'

की भाँति अपनी लेखनी और वाणी से समाज में भूषण के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्तियाँ फैलायी हैं।

भूषण का व्यक्तित्व और उनके कार्य ऐतिहासिक हैं। इतिहास में परिवर्तन करना किसी समाज के लिए हितकर नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि भारत के पक्षपातपूर्ण इतिहास का संशोधन कराया जाय, ताकि हमारे देश का सच्चा और उत्साहवर्द्धक इतिहास देश के सामने आ सके। उस दृष्टि से हमें भूषण के सम्बन्ध में जितनी अल्प बातें ज्ञात हुई हैं, इस पुस्तक में उन्हीं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

भूषण का व्यक्तित्व महान और उनकी विद्या-विषयक योग्यता तथा प्रतिभा उत्कृष्ट थी। उनका सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक तीनों प्रकार का ज्ञान अति उत्तम और सामयिक गति को उत्कर्ष देने वाला था। अलंकारों पर पूर्ण आधिपत्य होने के कारण ही विद्वानों में उनकी धाक बैठी हुई थी। समाज उन्हें सर्वोत्तम संगठन-कर्त्ता मान चुका था और उनके धार्मिक विचार अत्यन्त परिष्कृत थे। इन्हीं तीनों प्रकार की परिपक्वताओं के कारण उन्हें 'भूषण' की उपाधि मिली थी। देश के एक जाज्वल्यमान रत्न होने और पाँडित्य में सर्वोच्च माने जाने के कारण ही वे 'भूषण' कहे गये थे।

भूषण की भावना वैदिक आधार पर अवलम्बित थी। उसमें श्लेष की प्रधानता है, अतः 'भूषण' शब्द में भी हमें वही विचार-धारा कार्य करती हुई दिखलायी देती है जो उन्हें अपनी

आलंकारिक विद्वत्ता तथा राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिष्कृत शैली का अनुगमन करने के कारण ही प्राप्त हुई थी।

भूषण और शिवाजी के विचारों तथा कार्यों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि दोनों की भावनाएँ एक ही मार्ग का अनुगमन कर रही थीं। दोनों ही समाज-सुधार के पक्षपाती और स्वराज्य-स्रष्टा थे। उनमें अगर पहला महर्षि बाल्मीकि का अनुगमन कर रहा था तो दूसरा भगवान राम के पदानुसरण करने में अपना अहोभाग्य समझता था। शिवाजी का समर्थ गुरु रामदास को सारा राज्य अर्पण कर देना भगवान राम के राज्य-त्याग के समान ही महत्वपूर्ण है, एवम् उनके अपूर्व उत्सर्ग का द्योतक है। इसीलिए भूषण ने उन्हें ईश्वर के अवतार रूप में चित्रित किया है। महाराष्ट्र प्रान्तीय ग्रन्थों में भी हमें यही भावना कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है। 'शिव भारत' नामक संस्कृत ग्रन्थ और 'राधामाधव बिलास चम्पू' में भी हमें भूषण के उक्त विचारों का पूर्ण परिचय मिलता है।

भूषण की विशेषताओं पर पूर्णरूप से विचार करने पर यह आशा होती है कि समाज और देश भूषण के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेगा जिससे देश के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा, तथा उनका प्रिय क्रीड़ा-स्थल—भारत—उन्नति के पथ पर चल कर उत्कृष्ट राष्ट्रों के समकक्ष स्थान पाने में समर्थ हो सकेगा।

१०—परिशिष्ट

सवायी जयसिंह

भूषणकालीन तीन विभूतियों (१) सवायी जयसिंह* (२) छत्रपति छत्रशाल और (३) बाजीराव पेशवा—ने भारतीय राष्ट्रोत्थान में एक महान कार्य किया है। उत्तरी-भारत में सवायी जयसिंह ने सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था।

टाड साहब ने अपने एनल्स राजस्थान में सवायी जयसिंह पर यह आक्षेप किया है कि उन्होंने उत्तरी-भारत की कुंजी मरहठों के हाथ में दे दी तथा मक्कारी से मुगलों की शक्ति क्षीण करने में सहायक बने। यही नहीं, टाड साहब ने उनको राष्ट्रीयता और धार्मिकता† से भी सन्देह किया है और बतलाया है कि उन्होंने मरहठों की सहायता केवल राष्ट्रीयता की दृष्टि से नहीं की वरन् मालवा का सूबेदार रहते हुए मरहठों से कुछ स्वार्थपूर्ण सन्धि कर ली थी। इस प्रकार साम्राज्यवाद को हानि पहुँचाई। इस विषय में टाड साहब ने कई प्रकार की भूलें की हैं। उन्होंने इस पर विचार ही नहीं किया कि उस समय औरंगजेबी नीति के कारण सारा हिन्दू और शिया समाज विक्षुब्ध था। अतः उनमें राष्ट्रीयता की प्रबल धारा बहना स्वाभाविक था। सौभाग्य से उस समय महाकवि भूषण अपनी राष्ट्रीय कविता एवं राजनीतिक भावना द्वारा सारे भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का प्रसार कर रहे थे और सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर अखिल हिन्दू-समाज तथा अन्य लोगों को एक

---

* देखो हिन्दुत्व पृ० ५१-६०

† देखो टाडराज स्थान भाग २ पृ० २११-७

सगठन में लाने का घोर प्रयत्न* कर रहे थे। उसी का यह परिणाम था कि सवायी जयसिंह और बाजीराव पेशवा में घनिष्ट मैत्री हो गयी थी।

औरंगज़ेब ने मिर्जा जयसिंह को—जो सवायी जयसिंह के प्रपितामह थे विष दिलवाया था और उनके पुत्र की भी वही दशा की थी। इस प्रकार जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह और उनके पुत्रों को भी धोखा देकर मरवा डाला था। ऐसी दशा में उनकी सन्तान कहाँ तक वफादार रह सकती थी। यदि इतने पर भी किसी में स्वाभिमान न झलके तो मनुष्यत्व का अभाव ही मानना पडेगा।

फिर† वजीर कमरुद्दीन ने तो सवायी जयसिंह को जयपुर राज्य की गद्दी से पदच्युत करके उनके सौतेले भाई विजयसिंह को गद्दी पर बैठाने का उद्योग किया था, यदि जयसिंह इतना चतुर और सावधान न होता तो न तो वह अपना राज्य प्राप्त कर सकता था न उसे बढ़ा ही सकता था और न राष्ट्र का ही कोई कल्याण कर सकता था।

उसने अपने राज्य का विस्तार दिल्ली तक कर लिया था। उसका कोष धन से परिपूर्ण रहता था, उसने जयपुर नगर का बहुत ही भव्य रूप में निर्माण किया था। उसने विद्वानों की दो धार्मिक सभायें करवायी थीं जिनमें राष्ट्रीय तथा धार्मिक दृष्टि से समाज संशोधन का विधान रचवाया था। वह सदैव विद्वानों का आदर करता था और ज्योतिष का वह स्वयं गम्भीर विद्वान् था। उसने उज्जैन, जयपुर, काशी और दिल्ली में वेधशालाएँ बनवायी थीं। इस प्रकार जयपुर नरेश की कार्य-प्रणाली अनेक दिशाओं का अवलम्बन कर रही थी। राजनीतिक क्षेत्र में भी वे कम चतुर न थे। इस पर भी उन्हें मालवा की सूबेदारी बाजीराव पेशवा की शिफारिस पर ही मिली थी। उस समय दिल्ली के बादशाह पर बाजीराव पेशवा का क्या प्रभाव था यह इतिहास के पढ़ने वालों से

* देखो इसी पुस्तक में भूषण की राष्ट्रीयता

† देखो टाड राजस्थान भाग २ चैप्टर २ पृ० २६०-२६८

छिपा नहीं है। ऐसी दशा में जयसिंह का मराठों के विरुद्ध कुछ भी कार्य करना विश्वासघात होता और अपनी हानि भी करते अतः उनकी बुद्धिमानी इसी में थी कि वे सचाई और ईमानदारी से पेशवा का साथ देते, जैसा कि उन्होंने किया।

रहा मुग़लिया वंश का साथ देना, वह तो स्वयं औरंगज़ेब के पापों से नष्ट हो रहा था। उसका साथ देकर अपनी शक्ति-क्षीण करना मूर्खता होती। राव बुधसिंह का पतन इसी का परिणाम था अतः सवायी जयसिंह जैसे धार्मिक और राजनीतिक व्यक्ति से यह आशा करना ही व्यर्थ था। फिर उन्हें राजपूतों तथा अपने पूर्वजों का बदला चुकाना भी अभीष्ट था क्योंकि औरंगजेब एक प्रकार से राष्ट्रीय शत्रु हो रहा था। इसलिए सवायी जयसिंह पर मक्कारी का दोषारोपण नितान्त मिथ्या है। उन्होंने वही कार्य किया जो एक उच्च कोटि के धार्मिक और राष्ट्रीय व्यक्ति को करना उचित था।

सवाई जयसिंह के राजनीतिक चातुर्य की तो ऐतिहासिकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उसे राष्ट्र के लिए परम हितकर बतलाया है परन्तु उनके सामाजिक और धार्मिक कार्यों की ओर जनता का ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ और न ऐतिहासिकों ने ही उन पर दृष्टिपात किया। आशा है देश के जो विद्वान् लोग इस ओर शीघ्र ध्यान देंगे और राष्ट्र के हितकर कार्यों को जो सवायी जयसिंह और भूषण ने मिल कर किये हैं, उन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

सहायक ग्रन्थों की सूची

बृत्त कौमुदी, रचयिता मतिराम द्वितीय (हस्तलिखित प्रति)

विक्रम सतसई की रस चन्द्रिका टीका (हस्तलिखित प्रति)

मिश्रबन्धु विनोद, चार भाग

हिन्दी नव रत्न

साहित्य सिंधु (हस्तलिखित)

शिवसिंह सरोज

हिन्दुत्व (सावरकर कृत)

हिन्दी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट्स

खोज रिपोर्ट्स की सूची

पिंगल, चिन्तामणि कृत (हस्तलिखित)

कुमाऊँ राज का इतिहास

रीवाँ राज्य दर्पण

तवारीख बुन्देलखंड (उर्दू)

भूषण ग्रंथावली (हस्तलिखित प्रति, काशी राज्य पुस्तकालय) तथा छपी हुई प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग, साहित्य सेवक कार्यालय काशी, राम नारायण लाल बुकसेलर प्रयाग, इत्यादि।

शिवा बावनी (हस्तलिखित और छपी प्रतियाँ)

प्रबोध रस सुधासर, नवीन कृत (हस्तलिखित प्रति)

फतह प्रकाश (रतन कवि कृत हस्तलिखित प्रति)

टाड राजस्थान, दो भाग

(१) पारसनीस का इतिहास

(१) कैलूस्कर का इतिहास

शिवा छत्रपति बी० एन्० सेन कृत सभासद बखर का अनुवाद
खफी खाँ की तारीख़ (अंगरेजी अनुवाद)
वंश भास्कर
शिवाजी (पं० नन्द किशोर देव शर्मा कृत)
तज़किरए सर्व आज़ाद हिन्द (फ़ारसी)
वाक़ियाते सुमलिकात बीजापुरी
औरंगज़ेब नामा
बुन्देलखंड का इतिहास (हिन्दी)
गार्सा द तासी कृत इस्त्वार द ला लितरेत्योर इदु ई
ए इदुस्तानी (फ्रेञ्च बुक)
कान्य-कुब्ज वंशावली (हस्तलिखित)
मतिराम सतसई (पं० कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित)
छत्रसाल
बीरसिंह देव चरित (केशवदास कृत)
हिम्मत बहादुर विरुदावली (पद्माकर कृत)
छत्र प्रकाश
कविता कौमुदी
ललित ललाम
रस राज
रहिमन विनोद
सोलंकियों का वंशावली (रीवाँ राज्य पुस्तकालय)
सुरकियों की वंशावली (हस्तलिखित) पटेहरा राजासाहब के पुस्तकालय से प्राप्त
शिवराज शतक (गुजराती)
हिन्दी साहित्य का इतिहास (बाबू श्यामसुन्दर दास कृत)
" " (पं० रामचन्द्रजी शुक्ल कृत)

हिन्दी साहित्य का इतिहास (प० सूर्यदेवजी शर्मा, डी०-लिट् कृत)
„ „ (पं० रामशकर शुक्ल रसाल कृत)
„ „ (केई कृत अँगरेजी)
हिन्दी (पं० बदरीनाथ भट्ट कृत)
राधामाधव चम्पू (मरहठी)
शिव भारत (संस्कृत)
शिवदिग्विजय („)
कुवलयानन्द („)
साहित्य दर्पण (पं० शालिग्राम शास्त्री कृत विमला टीका)
काव्य प्रकाश (मम्मट कृत)
वाल्मीकीय रामायण
अद्भुत रामायण
ऋग्वेद संहिता
यजुर्वेद संहिता
दुर्गा सप्तशती
उत्तर रामचरित नाटक
कविकुल-कल्पतरु (चिन्तामणि कृत)
अलंकार पंचाशिका (हस्तलिखित) मतिराम कृत
कान्य-कुब्ज जाति का इतिहास (रघुनन्दन शर्मा कृत)
वैस क्षत्रिय वंशावली
पृथ्वीराज रासौ
राज रत्नमाला (मुंशी देवी प्रसाद कृत)
भगवन्त राय रासा
सुजान चरित्र
शृंगार संग्रह (सरदार कवि कृत)
पं० श्री लाल जी महापात्र, असनी के कवित्तों का संग्रह

रीवाँ राज्य रेकर्ड आफिस के काग़जात; भरतपुर राज्य पुस्तकालय के फुटकर काग़जात; भिनगा राज पुस्तकालय के फुटकर काग़ज़ात

हृदयराम के वंशज पटेहरा के जागीरदार के फुटकर काग़ज़ात

तिकवांपुर तथा चांद (ज़िला कानपुर) में मतिराम के वंशजों तथा सम्बन्धियों से प्राप्त पत्रादि।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दोस्तान, माधुरी, सुधा, सन्देश, शिक्षा, राजस्थान-केशरी, प्रताप, वर्तमान, लीडर, ट्रिब्यून, माडर्न रिव्यू, प्रभा, मनोरमा, विश्वमित्र, स्वाधीनता (मराठी), विशाल भारत, सम्मेलन पत्रिका, साहित्य, गंगा, भारत, अर्जुन और सरस्वती आदि पत्रिकाओं के विभिन्न लेख।

U. P. Gazetteers.
Imperial Gazetteers.
Archaeological Survey Reports.
Indian Antiquary.
Asiatic Journals.
Rewa State Gazetteer.
Bihar Gazetteer.
Shivaji by Sir Jadunath Sarkar.
Aurangzeb by Sir Jadunath Sarkar.
History of India by Vincent Smith.
History of the Mahratthas by Grant Duff.
Elliot's History.
Bardic Poetry edited by Lala Sita Ram.
Wordsworth.
Modern Vernacular Literature by Dr. Grierson.

१२—नामानुक्रमणिका

भ

र